चिर-कुमार-सभा ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ६५ वाँ ग्रन्थ ।

चिरकुमार-सभा ।

(सभ्य-हास्यपूर्ण प्रहसन ।)

मूल लेखक—

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।

अनुवादकर्त्ता—

एक रवीन्द्र-भक्त ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय ।

द्वि० श्रावण, १९८५ वि०

अगस्त, १९२८ ई०

मूल्य सवा रुपया ।

राजसंस्करण दो रुपया ।

प्रकाशकः—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

मुद्रकः—
मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रिंटिंग प्रेस,
३१८ ए, ठाकुरद्वार बम्बई ।

प्रस्तावना

हँसी एक अत्यन्त आश्चर्यजनक तत्त्व है। मनुष्यको सुख प्राप्त होनेसे ही हँसी आती है, यह सोचना भयंकर भूल है। बहुधा देखा जाता है कि जिस बात-पर रोना ही न्यायानुकूल है, उसे देखकर या सुनकर किसी विशेष कारणसे शरीर तथा मनमें एक इस प्रकारकी अनुभूति उत्पन्न हो जाती है, जिसे भाषा-तत्त्ववेत्तागण 'हास्य' कहा करते हैं। सभी जानते हैं कि जब बालकको ज़ोरकी गुदगुदी दी जाती है, तो कष्टके कारण उसे रोनेकी इच्छा होने पर भी वह बड़े जोरसे हँसता है। यह हास्य कदापि सुखजनित नहीं कहा जा सकता। इसी लिये कहता हूँ कि हास्यका तत्त्व बड़ा गूढ़ है। कोई दुर्घटना जब साधारण दृष्टिसे देखी जाती है, तो उसे देखकर स्वाभाविक आँसू उमड़ पड़ते हैं। पर उसीको जब कोई चतुर रसिक लेखक अपने कौशलसे व्यक्त करता है, तो जनता हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती है। इसका यह तात्पर्य न समझना चाहिए कि हँसी न रोक सकनेके कारण जनता उसके भीतर छिपे हुए दुःखकी अवज्ञा कर रही है। दुःखका अनुभव लेखक और पाठक, दोनोंको होता है; पर विशेष रूपमें व्यक्त होनेसे दुःखका अनुभव होने पर भी शरीर और मनमें एक प्रकारकी गुदगुदीका संचार होता है, और विना हँसे रहा नहीं जाता। उदाहरणके लिए एक सत्य घटना लीजिए। एक व्यक्तिने जीवन-भर अपना शरीर और आत्मा सुखाकर, अत्यंत दरिद्रावस्थामें अपने दिन बिताकर, दो हज़ार रुपए संचित किए। दो थैलियोंमें इन चंद्राकार, देवोपम, रजत-खंडोंको रखकर वह नित्य उन्हें देखा करता और उसका चित्त हर्षसे गद्गद हो जाया करता था।

अंतको यमका परवाना आया और वह कठिन रोगकी तीव्र ज्वालासे तप्त होने लगा। आरंभमें उसने कोई वैद्य, हकीम, या डाक्टर नहीं बुलाया। इस लिए नहीं कि दवाइयोंमें और वैद्य लोगोंकी क्षमतामें उसका विश्वास नहीं था। बल्कि इस लिए कि शरीर और रुपयोंकी तुलनामें उसे रुपए ही अधिक प्रिय थे। जब किसी तरह वह कठिन पीड़ा सहन न कर सका, तो कराहता हुआ कहने लगा— " कोई वैद्य मेरा दर्द दूर कर सकता, तो मैं उसे चार आने दे ही डालता। अब किसी तरह नहीं सहा जाता—भले ही चार आनेका खून हो!" इस घोर कलिमें चार आना स्वीकार करनेवाला कोई वैद्य न मिला। जब मरनेका ही निश्चय हो गया, तो उस व्यक्तिने अपनी थैलियाँ मँगवाई और दोनोंको अपनी दोनों बगलोंमें रखवाकर, वह दोनों हाथोंमें उन्हें यथाशक्ति अपनी छातीसे जकड़े रहा, और इसी हालतमें उसका प्राणान्त हो गया। यह घटना मैंने दो सत्य घटनाओंके आधारपर लिखी है। जिन जिन लोगोंने उसे कठिन पीड़ा सहते हुए इस अवस्थामें मरते देखा, उन्हें कभी सुख प्राप्त नहीं हुआ होगा, और न हँसी आई होगी। बल्कि मानव-चरित्रकी भयंकर गति और आश्चर्यजनक हीनता देखकर उनके दिल दहल उठे होंगे। पर यही बात जब विशेष कौशलके साथ किसी तृतीय व्यक्तिके सामने व्यक्त की जाय, तो उसे अवश्य हँसी आवेगी। दुःखकी हँसी इसीको कहते हैं। हमारे रात-दिनके व्यवहारमें दुःखकी ऐसी भयंकर घटनाएँ घटित हो रही हैं, जिनपर साधारण स्वस्थावस्थामें विचार करनेसे हँसी आती है। उच्च श्रेणीके प्रहसनोंमें यही हँसी व्यक्त की जाती है।

मोलियरकी कामेडियाँ इसी प्रकारके हास्यके लिए प्रसिद्ध हैं। घमंडी और झेकड़ीबाज़ मानव-समाज योग्यता और अधिकारके नामपर सयानेपनके साथ स्वाभाविक नियमोंके ऊपर कितना ज़ुल्म कर रहा है—मोलियरने अपनी चतुर लेखनीसे इसी बातको इस तरह व्यक्त किया है कि मानव-चरित्रके हलकेपनपर अफसोस होने पर भी हँसना पड़ता है। यह हँसी सारी मनुष्य-जातिकी है; पर सहृदय रसिक लेखक अपनी विशेषतासे इस दुःखकी हँसीपर ऐसा रंग फेर देता है कि उसके कारण माया-वश सुखकासा अनुभव होने लगता है। किन्तु वास्तवमें यह सुख नहीं है। द्विजेन्द्र-लालके हँसीके गीतोंमें कितना प्रलयंकर क्रंदन भरा पड़ा है, यह सभीको विदित है। उनके किसी किसी गीतसे हँसी और आँसू साथ साथ उमड़ पड़ते हैं, और

किसी किसी गीतसे उत्कट हास्य बाहर व्यक्त हो पकता है, पर अंतरका क्रंदन नीरव रहता है। रूसके सुप्रसिद्ध प्रहसन-लेखक Gogol गॉगलके अट्टहाससे स्मशान-चारी, मुंडमालाधारी भूतनाथके भैरव-हास्यकी भीतिका अनुभव होता है। Don Quixote डॉन क्विक्जोटके हास्यमें कितना दुःख मिश्रित है, यह विशेषज्ञोंको बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। असंख्य दुर्बलता, हीनता और संकीर्णताओंके जालसे जटिल सारा मानव-जीवन ही एक प्रहसन है। उसमें लिप्त होनेसे इस हास्यास्पद प्रहसनकी Tragedy ट्रेजिडीसे मनुष्य प्रतिक्षण भीत, संकुचित और दुःखित रहता है, पर Detached view (निःसंग दृष्टि) से उसे देखनेपर वह प्रहसन अपने वास्तविक रूपमें हमारी आँखोंके सामने झलकने लगता है; और हमें हँसी आती है। प्रहसन-लेखक इसी निःसंगदृष्टि Detached view से ही काम लेता है, इसीलिए घोर दुःखमें भी वह हमें हँसानेमें समर्थ होता है।

रवीन्द्रनाथका वर्तमान प्रहसन भी इसी ढंगका है। ज्ञान और आदर्शके अनुशीलनके प्रति, मनुष्य प्रतिक्षण हास्यास्पद चेष्टाओंमें रत रहता है। अपने आपको ठगता है, और दुनियाको ठगना चाहता है। परोपदेशका पांडित्य दिखलाता है, परपीड़नमें रत रहता है, और अपने आपको मानव-समाजसे अलग समझ कर दुनियाकी हँसी करना चाहता है। पर आत्म-बोध और आत्मानुभवकी चिन्ता उसे तनिक भी नहीं रहती। आदर्शकी खोजमें मतवाले हाथीकी तरह दर्पसे स्फीत होकर झूमता हुआ चलता है, पर अज्ञानके जंगलमें भटकता रहता है। अन्तको एक समय ऐसी बुरी तरह जालमें फँस जाता है कि उसके लिए हँसें या रोएँ, कुछ समझमें नहीं आता। यही गति उपस्थित प्रहसनके दो नायकोंकी है।

हमारे देशमें ब्रह्मचर्य और विवाह न करनेकी प्रतिज्ञाका ढोंग नवीन समाजमें दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। नई उम्रके जोशीले युवक ही, इस हास्यास्पद प्रतिज्ञामें अधिक रत रहते हैं। और बुरी यह है कि ऐसे युवकोंमें ही इच्छाशक्तिकी दुर्बलता अधिक पाई जाती है। ऐसे जोशीले युवकोंका पतन ही सबसे अधिक भयंकर होता है। यह एक अत्यंत भ्रान्त धारणा हमारे समाजमें वर्तमान है कि जो व्यक्ति स्त्रियोंसे अत्यधिक परहेज रखता है, उसका चरित्र विशुद्ध होता है। हम लोग यह नहीं समझते कि यह भयंकर शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक दुर्बलता है। सहज, स्वाभाविक रूपमें स्त्रियोंके साथ वार्तालाप करने और उन्नत भावोंका आदान-प्रदान करनेकी शक्ति और प्रवृत्तिका न होना समाजके लिए उतना

ही हानिकारक है, जितना उनके साथ अनधिकार और आवश्यकतावर्जित चर्चा-का होना। हमारे नवीन समाजमें इस समय दो दल वर्तमान हैं। एक दल स्त्रियों-की चर्चा-मात्रसे बेतरह घबराता है, और उनसे किसी प्रकारका भी संबंध नहीं रखना चाहता। यह प्रवृत्ति कदापि मानसिक स्वास्थ्यानुकूल नहीं समझी जानी चाहिए। इससे चारित्रिक दुर्बलता ही प्रकट होती है। दूसरा दल इतना अधिक स्त्री-भक्त है कि क्रान्तिके नामपर देश-भरमें गंदगीका प्रचार करना चाहता है। वह चिह्न भी स्वास्थ्यानुमोदित नहीं कहा जा सकता।

इस प्रहसनके श्रीश और विपिन, इन दोनोंमेंसे प्रथमोक्त दलके अंतर्गत हैं। अपनेको अत्यंत श्रेष्ठ आदर्शवादी समझकर वह स्त्री-जातिके प्रति घृणा प्रकट करते हैं, और उन्हें आदर्शकी प्राप्तिमें बाधा समझकर आजीवन विवाह न कर-नेकी भीष्म-प्रतिज्ञा कर बैठते हैं। उन्हें इस बातकी ख़बर नहीं रहती कि भीष्म-प्रतिज्ञा केवल भीष्मके ही योग्य थी और उन्हींके लिए हितकारी थी। आधुनिक समाजमें उसका अनुकरण करनेसे केवल पाखंड, संकीर्णता और दुर्बलताका ही परिचय मिलेगा। भीष्म तो तब भी स्त्रियोंके साथ हिलमिलकर रहते थे, उनके साथ वादानुवाद करते थे, उनके प्रति स्नेह प्रकट करते थे, पर हमारे ये दो आधुनिक ब्रह्मचारी वीर स्त्रियोंकी छूत मानते हैं, उन्हें अपनी सभामें सम्मिलित नहीं करना चाहते, उनके संबंधमें बातें करना तक नहीं पसंद करते। इस तरह अपनेको भीष्मसे अधिक दृढ़-चरित्र बनाकर वह 'देशोद्धार' में लगते हैं। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि ऐसे भीष्म-प्रतिज्ञोंका पतन सबसे अधिक हास्यास्पद होता है। अंतको ऐसी बुरी तरह वे दोनों स्त्रियोंके जालमें फँसते हैं कि देखकर हँसी भी आती है और दुःख भी होता है।

रवीन्द्रनाथ बड़े भावुक कवि हैं, इसलिए विनोदप्रिय होने पर भी उनका हास्य मोलियर और द्विजेन्द्रलालकी तरह तीव्र नहीं होता। हास्यके बदले स्थान स्थानमें कविताजनित भावुकताके उद्गार प्रकट होते हैं। इस प्रहसनमें भी वही हाल है। मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि यह प्रहसन हास्यप्रद होने पर भी दुःखमूलक है। इसमें आत्मानुभवहीन व्यक्तियोंके हास्यास्पद जीवनकी ट्रेजिडी Tragedy अभिव्यक्त हुई है। कॉमेडी Comedyके भीतर जो ट्रेजिक Tragic भाव छिपा है, वह इसमें अत्यंत सुन्दर रूपसे प्रस्फुटित हुआ है। योग्य पात्रकी प्राप्तिके संबंधमें निस्स-हाया, दुःखिनी कन्याओंके ऊपर समाजका अत्याचार, चिर-कुमार-व्रत-शील

हमारे ' देशभक्त ' युवकोंकी छिछली आदर्शवादिताका पाखंड, अनुभवहीन सरल सहृदयताकी अर्थशून्य दिन-चर्या (जो चन्द्रमाधव बाबूके चरित्रमें परिस्फुट है), विवाहके संबंधमें हमारे लोभी, स्वार्थी, विलास-प्रिय, विलायतगमनोन्मादग्रस्त युवकोंकी उत्कट इच्छा और कलुष-प्रवृत्ति (जो मृत्युंजय और दारुकेश्वरके चरित्रोंमें व्यक्त हुई है), इत्यादि शोचनीय बातें हँसीके रूपमें खिल उठी हैं।

कुछ बातें इस प्रहसनमें ऐसी हैं, जो हिन्दी संसारके संकीर्ण समाजमें कुरुचिपूर्ण समझी जा सकती हैं । शैलबालाका पुरुष-वेषधारण और विधवा होने पर भी असंयत कथोपकथन, नृपबाला और नीरबालाका चंचल और मुखर स्वभाव और वैवाहिक चर्चाके संबंधमें उनकी निर्लज्जता, रसिक दादाकी वृद्धावस्थाप्रतिकूल समाज-निषिद्ध रसिकता, अक्षयका सालियोंके साथ आवश्यकता तथा अधिकारसे अधिक रसालाप, आदि बातें ऐसी हैं, जिन्हें पढ़कर हिन्दीके Puritan (नीतिनिष्ठ) आलोचक भड़क उठेंगे; पर यह हमारे सुरुचिप्रचारकोंकी ज्यादती है । इस प्रकारके सहज, स्वाभाविक रसालापसे कविके हृदयकी सरलताका ही परिचय मिलता है, इससे कुरुचिका प्रचार कदापि नहीं हो सकता। हमारे युक्तप्रान्तीय समाजमें भी अक्सर यह देखा जाता है कि माता-पिता अपने लड़के लड़कियोंको उनके विवाहके संबंधमें परिहासकी ऐसी ऐसी बातोंसे खिझाते हैं, जिन्हें सुनकर नीतिनिष्ठ लोग कानोंमें उँगलियाँ देना चाहेंगे। पर यह मानना ही पडेगा कि माता पिताको अपने बालबच्चोंकी चारित्रिक नीतिका ख्याल कुछ कम नहीं होता। यह होते हुए भी वे स्नेहवश उनके साथ जो सरल परिहासकी बातें करते हैं, उनके द्वारा उनकी संतानके हृदयमें स्वाभाविक शुद्धताका ही भाव जागरित होता है, कुरुचिका नहीं। उदाहरणार्थ कई माता-पिता अथवा माता-पितातुल्य ज्येष्ठ भ्राता-भगिनी लड़के-लड़कियों अथवा भाई-बहनोंसे कहा करते हैं कि तुम्हारा विवाह किसी बाल-बच्चेदार बुढ़िया औरतके साथ अथवा (लड़कीके संबंधमें) किसी दुधमुँहे बच्चेके साथ कर देंगे । इन बातोंसे बालकोचित सरलता ही टपकती है, कुरुचि नहीं। उसी प्रकार रवीन्द्रनाथके वर्तमान प्रहसनके चरित्रोंके वार्तालापमें भी स्नेहपूर्ण परिहास ही व्यक्त हुआ है । हमारे हिन्दीके आलोचक तथा लेखक आवश्यकतासे अधिक नीतिनिष्ठ इसीलिए हैं कि उनकी आत्माओंमें पवित्रताका पूरा बल नहीं है। यही कारण है कि हमारे यहाँ दो परस्पर-विरोधी

प्रवृत्तियाँ देखनेमें आती हैं। कुछ 'श्रेष्ठ लेखक' हमारे यहाँ ऐसे वर्तमान हैं, जिनके प्रहसनोंसे निहायत गंदगी, अमार्जित रुचि और गांभीर्यहीनता झलकती है। कुछ ऐसे हैं कि जो रुचिके संबंधमें सीता, सावित्री, द्रौपदी और राम, युधिष्ठिर तथा भीष्मका ही अनुसरण पूर्ण मात्रामें करनेका ढोंग रचते हैं। कुछ भी हो, रवीन्द्रनाथकी रुचि हमारे समाजद्वारा निषिद्ध होने पर भी कुरुचि नहीं है, यही बात मैं कहना चाहता हूँ।

इस प्रहसनका रहस्य समझनेके लिए कुछ बातें इंगितके रूपमें मैंने इस क्षुद्र प्रबंधमें निर्देशित की हैं। विस्तृत बातें इसे पढ़नेसे ही व्यक्त हो सकती हैं।

—इलाचंद्र जोशी।

महाकवि रवीन्द्रनाथके अन्य ग्रन्थ।

हमारे यहाँसें 'रवि' बाबूके नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

आँखकी किरकिरी—यह उपन्यास मानव-स्वभावका बहुत ही बारीकीसे किया हुआ सुन्दर और भावपूर्ण जीता जागता हुआ चित्र है। संसारकी किसी भी भाषामें इसके जोड़का दूसरा उपन्यास नहीं है। मूल्य १॥), राजसंस्करणका २॥)

रवीन्द्र-कथाकुंज—'रवि' बाबूकी उत्तमोत्तम १०० कहानियोंमेंसे चुनी हुई सर्वश्रेष्ठ ९ कहानियोंका संग्रह। इन गद्यकाव्योंमें सभी रसों और अलंकारोंका यथेष्ट परिपाक हुआ है। मू० १)

मुक्तधारा—'रवि' बाबूके नाटकोंमें इसका स्थान बहुत ही ऊँचा है। इसमें पाश्चात्य मशीन-युगकी अभिशापरूप नास्तिकता और तज्जन्य बुराइयाँ बड़े ही हृदयवेधक ढगसे चित्रित की गई है। इसके साथ आरम-यज्ञके पुरातन भारतीय आदर्शका-जो उदीयमान युगका एक खास स्वरूप है,-सुंदर और हृदयवेधक चित्रण भी है। मू० ॥≈)

स्वदेश—देशसे सम्बन्ध रखनेवाले नौ सुंदर निबंधोंका संग्रह। देशका असली स्वरूप समझनेके लिये यह पुस्तक पढ़ना अनिवार्य है। दार्शनिकता इसमें भरी हुई है। चौथी बार छपा है। मू० ॥≈)

शिक्षा—'रवि'बाबूके शिक्षा विषयक ५ सुंदर निबंधोंका संग्रह। बड़े ही अनौखे ढंगसे लिखी गई है। यदि आप वर्तमान शिक्षाप्रणालीके गुणदोष जानना चाहें तो इसे अवश्य पढ़िए। इसे पढ़कर ही आप इसके दोषोंसे बच सकते हैं और गुणोंसे पूरा लाभ उठा सकते हैं। शिक्षकोंको और विद्यार्थियों तथा उनके माता-पिताओंको इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। दूसरी आवृत्ति। मू० ॥≠)

राजा और प्रजा—भारतमें शासक और शासितोंका एक दूसरेके प्रति संबंध, आचरण और अवस्थाका सजीव चित्र इन ११ निबंधोंमें बड़ी ही उत्तमतासे खींचा गया है। प्रत्येक देशवासीको इसे पढ़ना चाहिये। मू० १)

समाज—भिन्न भिन्न सामाजिक विषयोंपर ८ निबंधोंका संग्रह। वर्तमान सामाजिक क्रांतिका किस क्रमसे जुदी जुदी दिशाओंमें प्रसार हो रहा है और कहाँ

कहाँ ऐसे गढ़े हैं जिनमें समाजको गिरनेसे बचना चाहिये तथा ऐसे कौन कौनसे उज्ज्वल आदर्श हैं जिनके लिये समाजको प्रयत्न करना चाहिये, यदि आप यह सब जानना चाहते हैं तो इसे अवश्य पढ़िये। मू० ॥।-)

प्राचीन साहित्य—यदि आप वाल्मीकि, कालिदास, बाण आदि प्राचीन समयके श्रेष्ठ महाकवियोंकी महान् साहित्यकी कृतियोंकी अर्वाचीन समयके सर्वश्रेष्ठ महाकविके द्वारा की हुई आलोचनायें पढ़ना चाहते हैं तथा उन प्राचीन कृतियोंके अन्तर्तम सौन्दर्यका रसास्वादन करना चाहते हैं, तो इन निबन्धोंको अवश्य पढ़िये। मू० ॥)

रविबाबूके और भी कई ग्रन्थोंके अनुवाद प्रकाशित करनेका प्रबन्ध किया जा रहा है।

हँसी विनोदकी अन्य पुस्तकें।

ठोक पीटकर वैद्यराज। फ्रान्सके मशहूर लेखक मोलियरके एक प्रहसनका रूपान्तर। इसे पढ़कर आप लोट पोट हो जायँगे। तीसरी बार अनेक चित्रोंके साथ बड़ी ही सुन्दरतासे छपाया गया है। मू० ॥)

सूमके घर धूम। नाट्याचार्य द्विजेन्द्रलाल रायके प्रहसनका अनुवाद। एक कंजूस सेठकी ऐसी मिट्टी पलीद की गई है कि पढ़ते ही बनता है। मू० ।)

चौबेका चिट्ठा। बंकिम बाबूका अतिशय प्रसिद्ध ग्रन्थ। इसमें विनोद और विवेक दोनोंका विलक्षण संयोग है। इसे पढ़कर पाठक हँसते भी हैं और साथ ही ज्ञान भी प्राप्त करते हैं। चौथी आवृत्ति। मू० १)

गोबर-गणेश-संहिता। इसमें हँसी और चुभनेवाला व्यंग दोनों ही हैं। प्रत्येक निबन्धमें हँसीके साथ देशकी अनेक सामाजिक दुर्दशाओंका दिग्दर्शन कराया गया है। दूसरी आवृत्ति। मू० ॥)

नोट—एक कार्ड भेजकर हमारा बड़ा सूचीपत्र मँगाइए—

चिरकुमार-सभा ।

१

अक्षयकुमारके ससुर यद्यपि हिन्दू-समाजके ही अन्तर्गत थे, तथापि उनका चाल-चलन नवीन समाजके अनुरूप था। अपनी लड़कियोंको वह दीर्घकाल तक अविवाहित रखकर लिखना-पढ़ना सिखा रहे थे। इस बातपर जब लोग एतराज करते, तो वह कहते —हम लोग कुलीन हैं, हमारे यहाँ यह प्रथा बहुत दिनोंसे चली आई है।

उनकी मृत्युके पश्चात् उनकी विधवा स्त्री जगत्तारिणीने सोचा कि पढ़ाई-लिखाई बन्द करके लड़कियोंका विवाह कर देना चाहिए और निश्चिन्त हो जाना चाहिए। पर उनका स्वभाव ऐसा है कि वह सब कामोंमें ढील-ढाल करती हैं। जो इच्छा उनके मनमें उत्पन्न होती है, उसका कोई उपाय खोजकर वह नहीं निकाल सकती हैं। समय ज्यों-ज्यों बीतता जाता है त्यों-त्यों वह दूसरोंके सिर दोष मढ़ती जाती हैं।

उनके दामाद अक्षयकुमार नवीन प्रथाके अनुयायी हैं। वह सालियोंको इम्तहान पास कराके खुल्लमखुल्ला नव्य समाजके मन्त्रमें दीक्षित करानेके इच्छुक हैं। वह सेक्रेटेरियटमें एक उच्चपदाधिकारी हैं। गरमीके दिनोंमें उन्हें शिमला जाना पड़ता है। अनेक राजघरानेके दूत बड़े साहबके साथ मुलाक़ात तथा समझौता करा देनेके लिए उनकी खुशामद किया करते हैं। इन सब कारणोंसे ससुरालमें उनकी बड़ी धाक है।

विधवा सास उन्हें अनाथ कुटुम्बके अभिभावक तथा संरक्षक समझती है। जाड़ोंके महीने उन्होंने सासके आग्रहसे कलकत्तेमें अपने ससुरालमें ही बिताये। उनके वहाँ रहनेपर साली-समितिमें धूम मच गई।

कलकत्तेमें उनके निवासके अवसरपर एक बार स्त्री पुरबालाके साथ अक्षयकुमारकी ये बातें हुईः—

पुरबाला—अगर तुम्हारी अपनी बहनें होती, तो मैं भी देखती कि तुम कैसे चुप रहते! आज तक एक एकके तीन तीन चार चार वर खोज लाये होते! वे मेरी बहनें हैं, इसीलिये—

अक्षय—मानव-चरित्रके सम्बन्धमें तुमसे कोई बात छिपी नहीं है। अपनी बहन और स्त्रीकी बहनमें कितना प्रभेद है, यह बात तुमने इसी छोटी अवस्थामें ही मालूम कर ली है। कुछ भी हो, ससुरजीकी किसी भी लड़कीको दूसरेके हाथ सौंपनेको जी नहीं चाहता—इस सम्बन्धमें मुझमें उदारताकी कमी है, यह बात माननी ही पड़ेगी।

पुरबालाने सामान्य क्रोधका भाव दिखलाकर गम्भीर होकर कहा—देखो, तुम्हारे साथ मुझे एक समझौता करना है।

अक्षय—एक चिरस्थायी समझौता तो मन्त्रके द्वारा विवाहके दिन ही हो चुका है, फिर क्या एक दूसरा करना होगा!—

पुरबाला—यह उतना भयानक नहीं है। यह शायद उतना असह्य भी नहीं होगा।

अक्षयने रासवालोंका-सा हाव-भाव प्रकट करके कहा—सखी, अगर ऐसा है, तो जी खोलकर कहो! और फिर गाना शुरू कर दिया—

न जाने सोचा है क्या आज,
कहो जी खोल कहो प्यारी!
छलकती है आँखोंमें हाय!
न जाने कौन व्यथा न्यारी!

यहाँ यह कह देना उचित होगा कि अक्षयकुमार उमङ्गमें आकर गीतके दो चार पद अपने आप बना कर गा सकते थे, पर कभी कोई गीत पूरा नहीं करते थे। उनके मित्र अधीर होकर कहते थे—इतनी असाधारण क्षमता होनेपर भी तुम गीत समाप्त क्यों नहीं करते? अक्षय झट तानमें उसका जवाब देते—

क्या समाप्त करनेसे भाई, कभी हुआ कल्याण?
तेल न जलने पायेगा, मैं कर दूँगा दीपक निर्वाण।

इस प्रकारके व्यवहारसे सब लोग ऊबकर कहते हैं कि अक्षयसे किसी तरह पेश नहीं पाया जा सकता।

पुरबालाने भी खीझकर कहा—उस्तादजी, जरा ठहरिये! मेरा प्रस्ताव यह है कि दिनमें एक समय ऐसा निश्चित करो कि जब तुम परिहास नहीं करने पाओगे—जिस समय तुम्हारे साथ दो एक कामकी बातें हो सकेंगी।

अक्षय—गरीबका लड़का हूँ, इस लिये स्त्रीको अपनी बात कहनेकी आज्ञा देनेका साहस नहीं कर सकता। डर लगता है कि कहीं झट बाजूबंद न माँग बैठे! (फिर गाता है।)

कहीं वह माँग न बैठे मन,
इसीसे लेता हूँ मन खींच;
कहीं रम बैठे आँखोंमें—
सखी लेता हूँ, आँखें मीच।

पुरबाला—अच्छा, तब जाओ!

अक्षय—नहीं, नहीं, रूठो मत! अच्छा कहो, क्या कहती हो, सब सुनूँगा। लिस्टमें नाम लिखाकर तुम्हारी परिहास-निवारिणी सभाका सदस्य बनूँगा। तुम्हारे सामने कभी किसी किस्मकी बेअदबी नहीं

करूँगा। हाँ, क्या बात हो रही थी! सालियोंके विवाहकी बात? प्रस्ताव उत्तम है।

पुरबालाने विषादके कारण म्लान होकर कहा—देखो, बाबूजी मौजूद नहीं हैं। माँ तुम्हारा ही मुँह ताके बैठी हैं। तुम्हारी ही बात मानकर वह बहनोंकी इतनी उम्र होनेपर भी उन्हें पढ़ा रही हैं। अगर ऐसी स्थितिमें योग्य वर न ढूँढ़ सको, तो कैसा अन्धेर होगा, जरा इस बातका ख्याल तो करो!

अक्षयने लक्षण अच्छे न देखकर पहलेसे कुछ गम्भीर होकर कहा—मैं तो कह चुका हूँ कि तुम लोग कुछ चिन्ता न करो। मेरी सालियोंके पति गोकुलमें पाल-पोसकर बड़े किये जा रहे हैं।

पुरबाला—गोकुल कहाँ है?

अक्षय—जहाँसे तुमने इस अधमको अपने गोष्ठमें भरती किया है—हम लोगोंकी चिरकुमार-सभा।

पुरबालाने सन्देहका भाव प्रकट करके कहा—प्रजापति (ब्रह्मा) के साथ तो उन लोगोंका झगड़ा है!

अक्षय—देवताके साथ लड़नेसे कैसे जीत सकते हैं? वे लोग उन्हें सिर्फ खिझा देते हैं। इसलिए भगवान् प्रजापतिका झुकाव विशेष रूपसे इसी सभाके प्रति है। अच्छी तरहसे बन्द की हुई हँड़ियाके भीतर मांस जिस प्रकार पककर गल जाता है, प्रतिज्ञाके भीतर बन्द होकर पूर्वोक्त सभाके सदस्य लोग भी उसी प्रकार बिलकुल नरम हो गये हैं—विवाहके लिये बिलकुल तैयार हो उठे हैं—अब पत्तलमें परोसने भरकी देर है। मैं भी तो एक समय इस सभाका सभापति था।

आनन्दिता पुरबालाने विजय-गर्वसे मुस्कुराकर पूछा—तुम्हारी क्या दशा हुई थी?

अक्षय—कुछ पूछो मत ! प्रतिज्ञा की थी कि स्त्रीलिङ्गवाची कोई शब्द तक मुँहमें न लाऊँगा, किन्तु अन्तको यह हालत हुई कि समझने लगा, श्रीकृष्णकी सोलह सौ गोपियाँ यदि दुष्प्राप्य थीं, तो भी कोई बात नहीं थी; अगर महाकालीकी चौसठ हजार योगिनियोंका भी पता लग जाता, तो उन्हींसे एक बार पेट-भर प्रेमालाप कर लेता—ठीक इसी समय तुम्हारे दर्शन हुए !

पुरबाला—चौसठ हजारकी हवस तो मिट गई न ?

अक्षय—इस सम्बन्धमें तुम्हारे सामने कुछ नहीं कह सकता, गुस्ताख़ी होगी। हाँ, इशारेसे इतना कह सकता हूँ कि काली माताने अवश्य दया की है !—ऐसा कहके उसने पुरबालाका चिबुक पकड़कर, मुँह जरा ऊपरको उठाकर, सकौतुक स्निग्ध प्रेमसे उसे देखा। पुरबालाने कृत्रिम क्रोध प्रकट करके कहा—मैं भी कहूँगी, बाबा भोलानाथके यहाँ नन्दी भृङ्गीका अभाव नहीं था, मेरे ऊपर भी क्या उन्होंने दया की है ?

अक्षय—सम्भव है। इसीलिये तुम्हें कार्त्तिक मिला है।

पुरबाला—फिर हँसी-ठट्ठा शुरू हुआ !

अक्षय—कार्त्तिककी बात क्या ठट्ठा है ! मैं कसम खाकर कहता हूँ कि यह मेरा आन्तरिक विश्वास है।

दोनों इस प्रकार वादानुवाद कर रहे थे। ऐसे समय शैलबालाने प्रवेश किया। वह मँझली बहन है। विवाहके एक महीनेके बाद ही विधवा हो गई थी। बाल कटे होनेसे लड़कोंके समान दिखलाई देती है। संस्कृत भाषामें ऑनर सहित बी० ए० पास करनेके लिये उत्सुक है।

शैलने आकर कहा—जिज्जाजी, अपनी दो छोटी सालियोंकी रक्षा कीजिए।

अक्षय—यदि वे अरक्षणीया[1] हो गई हैं, तो मैं मौजूद हूँ, पर माजरा क्या है?

शैल—अम्माँकी घुड़कियाँ बरदाश्त न कर सकनेके कारण रसिक दादा न जाने कहाँसे कुलीन घरानेके लड़कोंका एक जोड़ा पकड़कर ले आये हैं। अम्माँने उन्हींके साथ अपनी दोनों लड़कियोंका विवाह करनेका निश्चय किया है।

अक्षय—ओफ़! एकदम ब्याहका एपिडेमिक शुरू हो गया! प्लेगकी तरह! एक घरमें एक साथ दो लड़कियोंपर आक्रमण! डर लगता है कहीं मुझे भी न दबा बैठे!—ऐसा कहके वह गाने लगा—

उसीके रहता हूँ मैं पास,
इसीसे रहता हूँ सत्रास—
कहीं घुस जाय कलेजेमें
उसीके नैन-बैनकी फाँस!

शैल—तुम्हारे गीत गानेका क्या यही उचित समय है?

अक्षय—क्या करूँ कहो तो! सहनाई बजाना नहीं सीखा, नहीं तो मजा दिखा देता। तुम्हीं बतलाओ न कैसे शुभकर्मका अवसर है! दो सालियोंका गँठजोड़ा! पर इतनी जल्दी काहेकी है?

शैल—वैशाख मासके बाद एक साल तक विवाहके लग्न दिन नहीं पाये जायँगे।

पुरबाला अपने पतिको लेकर सुखी है। उसकी धारणा है कि किसी तरहसे स्त्रियोंका विवाह हो जानेसे वे सुखी हो जाती हैं। उसने मन-ही-मन खुश होकर कहा—शैल, तुम सब पहले ही क्यों चिन्ता करने लगती हो? पहले वर तो देख लेने दो।

---

[1] जिस कुमारीने विवाहकी अवस्था पार कर ली हो और इस कारण जो घरमें रखनेके योग्य न समझी जाय, उसे भी 'अरक्षणीया' कहते हैं।—अनुवादक।

शिथिल प्रकृतिके लोगोंका यह स्वभाव होता है कि वे अचानक असमयमें मन स्थिर करनेमें समर्थ होते हैं, और तब भले-बुरेकी जाँचका परिश्रम स्वीकार न करके एकदम पहलेके सुदीर्घ शैथिल्यकी पूर्ति करनेकी चेष्टा करते हैं। तब एक मुहूर्त्तकी देर भी उन्हें असह्य प्रतीत होती है। मालिकिन (जगत्तारिणी) की स्थिति भी ऐसी ही है। उन्होंने आकर कहा—बेटा अक्षय !

अक्षय—क्या है अम्माँ !

जगत्तारिणी—तुम्हारी बात मानकर मैं अब लड़कियोंको नहीं रख सकती !—इस बातसे उनका आशय यह था कि लड़कियोंकी सब प्रकारकी दुर्घटनाओंके लिये अक्षय ही उत्तरदायी है।

शैलने कहा—लड़कियोंको नहीं रख सकती हो, तो क्या उन्हें बाहर निकाल दोगी ?

जग०—यह देखो ! तुम लोगोंकी बात सुनकर ज्वर चढ़ आता है ! बेटा अक्षय ! शैल विधवा है, इसे इतना पढ़ाकर, इम्तहान पास कराकर क्या फ़ायदा होगा ?

अक्षय—अम्माँजी, शास्त्रमें लिखा है कि लड़कियोंके लिये कुछ-न कुछ उत्पात अवश्य चाहिए। या तो पति चाहिए, या विद्या चाहिए या हिस्टीरिया चाहिए। देखिए न, लक्ष्मीके विष्णु वर्तमान हैं इसलिए उन्हें विद्याकी अवश्यकता नहीं है—वह अपने पति और उल्लूको लेकर ही व्यस्त रहती हैं—पर सरस्वतीके पति नहीं है, इसलिए उन्हें विद्याका आश्रय ग्रहण करना पड़ता है।

जग०—कुछ भी हो बेटा, वैशाखके महीनेमें लड़कियोंका ब्याह मुझे करना ही होगा।

पुरबाला—हाँ अम्माँ, मेरी भी यही राय है। लड़कियोंका ब्याह जितनी जल्दी हो जाय, उतना अच्छा।

उसकी बात सुनकर अक्षयने चुपकेसे कहा—ठीक कहती हो। जब एकाधिक पतिके लिये शास्त्रमें निषेध किया गया है, तब समयपर ब्याह कर लेनेसे पति क़ाबूमें किया जा सकता है।

पुरबाला—क्या बकते हो! अम्माँ सुनेंगी।

जगत्०—रसिक चचा आज वर दिखाने आयँगे। बेटी पुरी, चल, उनके जलपानका बन्दोबस्त करें।

पुरबाला अपनी माँके साथ उत्साहपूर्वक भाण्डारकी ओर चली गई।

उनके चले जाने पर मुखोपाध्याय महाशयके साथ शैलकी गुप्त कमेटी बैठी। ये दो साली-बहनोई परस्पर परम मित्र थे। अक्षयके विचार तथा रुचिके द्वारा ही शैलका स्वभाव गठित था। अक्षय अपनी इस शिष्याको अपने समवयस्क भाईके समान देखते थे। उनके इस स्नेह-में सौहार्दकी मात्रा अधिक थी। उसके साथ वह परिहास अवश्य करते थे, पर उसके प्रति मित्रकी तरह श्रद्धाका भाव था।

शैलने कहा—अब तो देरी नहीं की जा सकती जिज्जाजी! इस बार तुम्हारी चिरकुमार-सभाके विपिनबाबू और श्रीशबाबूको न धमका-नेसे काम नहीं चलेगा। अहा! दोनों लड़के सुन्दर हैं। हमारी नृप और नीरके साथ उनकी अच्छी जोड़ी मिलेगी। तुम तो चैतके भीतर ही भीतर शिमले चले जाओगे। अम्माँको इस बार नहीं रोका जा सकेगा।

अक्षय—पर सभामें अचानक असमयमें ऊधम मचानेसे सब लोग चौंक उठेंगे। अण्डेका छिकल तोड़ डालनेसे ही कुछ चिड़िया नहीं

निकलती। उसे अच्छी तरहसे सेना होता है। ऐसा करनेमें यथेष्ट समय लगता है।

शैल थोड़ी देर तक चुप हो रही—इसके बाद अचानक मुस्कुराकर उसने कहा—बहुत अच्छी बात है, सेनेका भार मैं अपने ऊपर लेती हूँ जिजाजी!

अक्षय—जरा साफ़-साफ़, खुलासेके साथ बात कहो।

शैल—दस नम्बर-वाले मकानमें ही तो उनकी सभा है न? छतके ऊपरसे होकर वहाँ जाया जा सकता है। मैं पुरुष-वेश धारण करके उन लोगोंकी सभाका सदस्य बनूँगी। इसके बाद सभा कितने दिनों तक टिकी रह सकती है, देख लूँगी।

अक्षय आँखें फाड़कर, क्षणभरके लिये आश्चर्य-चकित होकर ठठाकर हँस पड़ा। बोला—कैसे अफ़सोसकी बात है कि तुम्हारी दीदीके साथ व्याह करके सभासे अपना नाम कटवा चुका हूँ, नहीं तो मैं और मेरे साथी तुम्हारे कोमल जालमें फँसकर मजेमें आँखें मूँदे रहते! ऐसे सुखका अवसर भी हाथसे गया! सखी, मन लगाकर सुनो—

> **हाय! हृदय-काननके निठुर शिकारी!**
> **व्यर्थ फँसाते उसे जालमें जो है चरण-भिखारी!**
> **निशि-दिन जो जन तव पद-तलमें पड़ा पड़ा मरता है,**
> **नयन-बाणके आघातोंका, है क्या वह अधिकारी?**

शैलने कहा— छिः जिजाजी, तुम क्या फिर पुराना ढर्रा पकड़ने लगे? इस जमानेमें क्या नयनोंके बाण-फाण चलानेका रिवाज है? अब तो युद्धविद्यामें बहुत बदलाव हो गया है।

इतनेमें दो बहनें नृपबाला तथा नीरबाला, जो क्रमसे षोडशी तथा चतुर्दशी थीं, वहाँ चली आईं। नृपका स्वभाव शान्त तथा स्निग्ध है।

नीरूका स्वभाव इसके विपरीत है। वह सर्वदा परिहास तथा चञ्चलतासे आन्दोलित रहती है।

नीरूने आते ही शैलके गले लगाकर कहा—मँझली दीदी, आज कौन आवेंगे?

नृप—जिज्जाजी, आज क्या तुम्हारे मित्रोंको न्योता दिया गया है? जलपानका बन्दोबस्त क्यों हो रहा है?

अक्षय—खूब! कितावें पढ़ पढ़कर आँखें फोड़ डालीं। पृथिवीके आकर्षणसे किस प्रकार उल्कापात होता है, यह सब लाख दो लाख कोसकी खबर तुम्हें मालूम रहती है, पर आज १८ नम्बर मधु मिस्त्रीकी गलीमें किसके आकर्षणसे कौन आ रहा है, यह तुम्हें मालूम नहीं?

नीरू—मैं जान गई हूँ सँझली दीदी!—ऐसा कहके उसने नृपकी पीठ ठोंकी और उसके कानके पास मुँह ले जाकर धीरेसे कहा—तेरा वर आ रहा है, इसी लिये आज सुबह मेरी बाँईं आँख फड़क रही थी!

नृपने उसे जरा ढकेलकर कहा—तेरी बाँईं आँख फड़कनेसे मेरा वर क्यों आयेगा?

नीरूने कहा—हर्ज क्या है? मेरी बाँईं आँख तेरे वरकी खातिर फड़क उठी, इसके लिये मुझे बिलकुल अफ़सोस नहीं है। पर जिज्जाजी, जलपानका आयोजन तो दो आदमियोंके लिये हो रहा है, सँझली दीदीका क्या स्वयम्वर होगा?

अक्षय—तुम भी वञ्चित नहीं रहोगी।

नीरू—वाह जिज्जाजी, कैसी अच्छी खबर सुनाई! बतलाओ तुम्हें क्या बख्शीश दूँ? यह लो मेरे गलेका हार—मेरे हाथोंके स्वर्ण-वलय।

शैलने घबराकर कहा—छी-छी! हाथ खाली न करना।

नीरूने कहा—जिज्जाजी, आज हमारे वरागमनके ऑनरमें छुट्टी देनी होगी।

नृप—क्या वर-वर बक रही है! जरा इसे देख तो मँझली दीदी!

अक्षय—इसी लिये इसका नाम मैंने बर्बरा रक्खा है! अयि बर्बरे! भगवान्‌ने तुम्हारी सहोदराओंको यह एक 'अक्षय' वर दे रक्खा है, तब भी तुम्हें सन्तोष नहीं है?

नीरू—इसी लिये तो लोभ अधिक बढ़ गया है।

नृप अपनी छोटी बहनको संयत करना असम्भव जानकर उसे खींचकर ले गई। नीरूने चलते चलते दरवाजेसे मुँह लौटाकर कहा—आनेपर जरूर खबर देना जिज्जाजी! धोखा न देना। देखते ही हो कि सँझली दीदी कैसी चञ्चल हो रही हैं।

शैलने स्नेहपूर्वक मुस्कुराकर दोनों बहनोंको देखा और कहा—जिज्जाजी, मैं हँसी नहीं करती, सच कहती हूँ—मैं चिरकुमार सभामें भरती होऊँगी। पर मेर साथ एक परिचित व्यक्ति भी चाहिये। तुम क्या अब किसी उपायसे सदस्य नहीं बन सकते?

अक्षय—नहीं, मैं पाप कर बैठा हूँ। तुम्हारी दीदीने मेरी तपस्या भङ्ग करके मुझे स्वर्गसे वञ्चित कर दिया है।

शैल—तो फिर रसिक दादाको पकड़ना होगा। वह किसी सभाके सदस्य न होनेपर भी अभी तक चिरकुमार-व्रतकी रक्षा किए हैं।

अक्षय—सदस्य बनते ही वह इस बुढ़ापेमें व्रत भङ्ग कर बैठेंगे। मछली वैसे ही ठीक रहती है। उसे पकड़ो तो वह मर जाती है। प्रतिज्ञाका भी यही हाल है—उसे बाँधते ही उसका सत्यानाश हो जाता है।

इतनेमें वहाँपर रसिक दादा आ उपस्थित हुए । उनके सिरके आगेका हिस्सा गञ्जा हो गया था, मूँछके बाल पक गये थे । उनका रङ्ग गोरा था और आकार दीर्घ । अक्षयने उन्हें धमकाते हुए कहा—क्यों रे पाषण्ड, भण्ड, अकाल्कुष्माण्ड !

रसिकने दोनों हाथ फैलाकर शान्त करते हुए कहा—क्यों भाई मत्तमन्थर कुञ्ज-कुञ्जर पुञ्ज-अञ्जनवर्ण !

अक्षय—तुम क्या मेरे साली-पुष्प-वनमें दावानल भड़काना चाहते हो ?

शैल—क्यों दादा, तुम्हें इससे क्या फायदा है ?

रसिक—क्या करूँ, अब नहीं सहा जाता ! प्रतिवर्ष यदि तुम्हारी बहनोंकी उम्र बढ़ती जाती है, तो तुम्हारी अम्माँ मुझे ही क्यों दोष देती हैं ? कहती हैं, बैठे बैठे खा रहे हो, लड़कियोंके लिए दो वरोंकी खोज भी नहीं कर सकते ! अच्छा, मैं नहीं खाऊँगा, तो क्या ऐसा करनेसे वर मिल जायँगे या तुम्हारी बहनोंकी अवस्था घट जायगी ? जिन दो लड़कियोंको वर नहीं मिल रहे हैं, वे तो खूब मजेमें खा रही हैं ! शैल, कुमारसम्भवका यह श्लोक याद है ?—

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः;
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियम्वदाम्
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ।

दुर्गाने अपना वर ढूँढ़नेके लिये खाना पीना छोड़कर तपस्या की थी—पर पोतियोंके वर न मिलनेसे क्या मैं बुड्ढा आदमी खाना-पीना छोड़ दूँ ? तुम्हारी अम्माँका यह कैसा विचार है ! अहा शैल, याद है न, तदप्यपाकीर्णमतः प्रियम्वदाम्—

१ निकम्मा, अकर्मण्य ।

शैल—याद है दादा, पर इस समय कालिदास अच्छा नहीं मालूम होता।

रसिक—अगर ऐसा है, तो इसे अत्यन्त दुःसमय कहना होगा।

शैल—इसीलिये तुम्हारे साथ कुछ बातें करनी हैं।

रसिक—मैं राजी हूँ। जैसी राय चाहिए दूँगा। अगर 'हाँ' कहलाना चाहती हो, तो 'हाँ' कहूँगा, 'ना' कहलाना चाहती हो, तो 'ना' कहूँगा। मुझमें यह गुण विशेष रूपसे वर्तमान है। मैं सबकी हाँमें हाँ मिला देता हूँ, इसीलिये सब मुझे अपने ही समान बुद्धिमान समझते हैं।

अक्षय—तुमने जिन अनेक कौशलोंसे अपनी धाक जमा रक्खी है, उनमेंसे एक कौशल तुम्हारा गंजा होना भी है।

रसिक—एक और है—यावत् किञ्चिन्न भाषते—मैं बाहरके लोगोंके साथ ज्यादा बातें नहीं करता हूँ।

शैल—उसी कमीको शायद हमारे यहाँ पूरा कर लिया करते हो!

रसिक—तुम लोगोंके पास तो मैं पकड़ा गया हूँ!

शैल—अगर पकड़े गए हो, तो चलो—जो कहूँगी वही करना होगा।—यह कहके शैल उन्हें परामर्शके लिए दूसरे कमरेमें ले चली।

अक्षय कहने लगा—ऐं, शैल! अच्छा, आज रसिक दादा राजमन्त्री बनाए गए हैं! मुझे धोका!

शैलने चलते-चलते पीछेकी ओर मुँह फिराकर कहा—जिजाजी, तुम्हारे साथ क्या मेरा परामर्श लेनेका नाता है? परामर्श तो बूढ़े लोगोंसे ही लिया जाता है।

अक्षयने कहा—तब तो राजमन्त्री-पदकी आशा छोड़कर मैं अपना दरबार भङ्ग किये देता हूँ।—ऐसा कहके शून्य कमरेमें खड़े रहकर अचानक उच्च स्वरसे गाने लगा—

रँगीले हाथोंमें रक्खूँगा, मैं तो बीन-बीनकर फूल,
सुसम्मति या पहरा देनेमें, मेरी बुद्धि नहीं अनुकूल।

घरके मालिक जब जीवित थे, तब वह रसिकको काका कहकर पुकारते थे। रसिक बहुत वर्षोंसे उनके आश्रयमें रहकर घरके सुख दुःखोंसे पूरी तरह संश्लिष्ट हो गए थे। मालिकिनके व्यावहारिक विषयोंमें दक्ष न होनेके कारण घरके मालिककी मृत्युसे वह अनेक प्रकारकी असुविधाओंका अनुभव कर रहे थे और जगत्तारिणीके असङ्गत आवेदनसे उन्हें अवकाशकी कमी पड़ गई थी। किन्तु उनकी समस्त असुविधाओं तथा अभावोंकी पूर्त्ति शैल कर देती थी। शैलके कारण ही बीमारीके समय उनकी सेवा तथा पथ्यमें किसी बातकी क़सर नहीं रही। उसीकी सहकारितासे उनकी संस्कृत-साहित्यकी चर्चा पूर्ण मात्रामें चल रही थी।

रसिक महाशय शैलका प्रस्ताव सुनकर पहले तो अत्यन्त आश्चर्य-पूर्वक उसका मुँह ताकते रह गये; पर बादको मुस्कुराने लगे और राजी हो गए। बोले—भगवान् हरिने नारीके कपट-वेशमें पुरुषको मोहित किया था, यदि तू पुरुषके कपट-वेशमें पुरुषको मोहित कर सके, तो मैं हरि-भक्ति त्यागकर तेरी ही पूजामें शेष जीवन व्यतीत करूँगा। पर अगर तेरी अम्माँको यह मालूम हो जाय तो ?

शैल—केवल अन्य तीन लड़कियोंको स्मरण करके ही अम्माँ इतनी ऊब जाती है कि हम लोगोंकी खबर उन्हें नहीं रहती। उनके सम्बन्धमें कुछ चिन्ता न करो।

रसिक—किन्तु सभामें किस प्रकार सभ्यता प्रकट करनी होती है, यह तो मैं कुछ नहीं जानता।

शैल—ख़ैर, यह मैं देख लूँगी।

२

श्रीश और विपिन ।

श्रीश—कुछ भी कहो, जब अक्षय बाबू हम लोगोंके सभापति थे तब हमारी चिरकुमार-सभा अच्छी जमती थी। वर्तमान सभापति चन्द्रनाथबाबू ज़रा बेढब और कड़े आदमी हैं।

विपिन—जब वह थे तब रसका ज़ोर कुछ ज्यादा था—चिरकौमार्य व्रतके लिये रसाधिक्य अच्छा नहीं होता, मेरी तो यह राय है।

श्रीश—मेरा मत ठीक इसके विपरीत है। हमारा व्रत कठिन है, इसीलिए उसके साधनमें रसकी अधिक आवश्यकता है। सूखी मिट्टीमें फ़सल तैयार करनेके लिये क्या पानीके सिंचावकी जरूरत नहीं रहती? जीवन-भर विवाह नहीं करेंगे, यह प्रतिज्ञा ही यथेष्ट है, क्या इसलिए सब तरफ़से सूखकर मरना होगा?

विपिन—कुछ भी कहो, किन्तु अचानक कुमार-सभा छोड़कर विवाह कर लेनेसे अक्षय बाबू सभाको मानो ढीली ढाली कर गए हैं। भीतर-ही-भीतर सभीकी प्रतिज्ञाका ज़ोर कमता जाता है।

श्रीश—बिलकुल नहीं। मैं अपनी बात कहता हूँ, मेरी प्रतिज्ञाकी शक्ति और अधिक बढ़ गई है। जिस व्रतकी रक्षा सभी सहजमें ही कर सकते हैं, वह श्रद्धाके योग्य नहीं।

विपिन—एक सुसंवाद सुनाता हूँ, सुनो।

श्रीश—तुम्हारी सगाई हुई है क्या?

विपिन—हाँ, तुम्हारी दौहित्रीके साथ।—मज़ाक़ रहने दीजिए। पूर्ण कल कुमार-सभाका सभ्य हो गया है।

श्रीश—पूर्ण ! यह आप क्या कह रहे हैं ! अगर ऐसा है तो पत्थर पानीमें बहने लगा !

विपिन—पत्थर स्वयं नहीं बहता। उसे और किसी चीजने अकूल सागरमें बहा दिया है। अपनी बुद्धिके अनुसार मैंने इसका इतिहास संगृहीत किया है।

श्रीश—जरा देखें तो, तुम्हारी बुद्धिकी दौड़ कहाँ तक है।

विपिन—तुम्हें मालूम होगा, पूर्ण सन्ध्याको चन्द्रनाथबाबूके पास अपने सबकोंके 'नोट' लिखने जाता है। उसदिन मैं और पूर्ण साथ ही चन्द्रबाबूके घर गए थे। उस समय वह 'मीटिङ्ग'से वापस आए हुए थे। नौकरके बत्ती जलानेपर ज्यों ही पूर्ण किताबके पन्ने उलटने लगा, त्यों ही—क्या बतलाऊँ, बङ्किमबाबूका उपन्यास समझो—एक लड़की पीठपर वेणी लटकाए हुए—

श्रीश—क्या सच कहते हो, विपिन ?

विपिन—अरे यार, जरा सुनो भी। एक हाथमें चन्द्रबाबूके लिये जलपानकी रकाबी लेकर और दूसरे हाथमें पानीका गिलास लेकर अचानक आ उपस्थित हुई। हमें देखते ही वह अत्यन्त सङ्कुचित तथा चकित हो गई और लज्जाके कारण उसके मुँहमें ललाई छा गई। हाथ खाली न होनेके कारण सिरपर कपड़ा डालनेका उपाय नहीं था। जल्दीसे मेजपर जलपान रखकर भाग गई। ब्राह्म है, पर तैंतीस करोड़ लोगोंके साथ उसने भी लज्जाको जलाञ्जलि नहीं दी है और सच कहता हूँ श्री-की भी रक्षा उसने की है।

श्रीश—देखने-सुननेमें शायद अच्छी है ?

विपिन—कुछ पूछो मत। ग़ज़बकी दिखलाई देती है। अचानक बिजलीकी तरह चमककर हमारे पढ़नेपर वज्राघात कर गई।

श्रीश—वाह भाई वाह! अफ़सोस है मैंने एक दिन भी उसे नहीं देखा। वह लड़की है कौन, बतला सकते हो?

विपिन—हमारे सभापति महाशयकी भाञ्जी। नाम है निर्मला।

श्रीश—क्या कुमारी है?

विपिन—इसमें क्या शक! इसी घटनाके बाद ही पूर्णने कुमार-सभामें अपना नाम लिखा लिया है।

श्रीश—पुजारीके वेशमें देवता चुरानेका इरादा तो नहीं है?

[एक प्रौढ़ व्यक्तिका प्रवेश।]

विपिन—क्यों महाशय, आप कौन हैं?

उक्त व्यक्ति—मेरा नाम वनमाली भट्टाचार्य है।

श्रीश—आप यहाँ किस कामके लिए आए हैं, कहिए।

वन०—काम कुछ नहीं है। आप सज्जन लोग हैं। आप लोगोंके साथ सदालाप—

श्रीश—अगर आपको कोई काम नहीं है, तो हमारे बहुत काम पड़े हैं। यदि अन्य किसी सज्जनके साथ सदालाप करें तो—

वन०—अच्छा, तब तो कामकी बात हो ले!

श्रीश—अच्छी बात है, फ़रमाइए।

वन०—कुम्हारटोलेके नीलमाधव चौधरी महाशयकी दो परमा सुन्दरी कन्याएँ हैं—उनकी अवस्था विवाह-योग्य हो गई है।

श्रीश—हो गई है तो इससे क्या? इससे हमारा क्या सम्बन्ध है?

वन०—यदि आप ध्यान दें, तो सम्बन्ध भी हो जायगा। इसमें क्या मुश्किल है!

विपिन—आप अपनी दया अपात्रोंके ऊपर वर्षित कर रहे हैं।

वन०—अपात्र! खूब कही! आप लोगोंके समान सत्पात्र मुझे और कहाँ मिलेंगे! मैं आप लोगोंकी नम्रतासे और भी अधिक मुग्ध हो गया हूँ।

श्रीश—यदि आप यह मुग्ध भाव रखना चाहते हैं, तो यहाँसे अभी रास्ता नापिए। विनय-गुण* अधिक ऐंठन नहीं सह सकता।

वन०—कन्याके पिता काफ़ी रुपए देनेके लिए राजी हैं।

श्रीश—शहरमें भिखारियोंकी कमी नहीं है। विपिन, जरा क़दम बढ़ाओ। कहाँ तक इस तरह रास्तेमें बकते मरें? तुम्हें मज़ा आ रहा है, पर मुझे इस प्रकारका 'सदालाप' अच्छा नहीं लगता।

विपिन—क़दम बढ़ाकर भागेंगे कहाँ? भगवान्‌ने इन्हें भी तो एक जोड़ा लम्बे पाँव दिए हैं।

३

जिजाजी!

अक्षयने कहा—क्या आज्ञा है!

शैलने कहा—कुलीन घरानेके दो लड़कोंको किस उपायसे निकाल दें?

अक्षयने उत्साहपूर्वक कहा—ज़रूर निकालना होगा! यह कहके उसने गीत गाना शुरू कर दिया—

कौन तुम्हारे पास आयगा, सखी, देख मैं लूँगा।
तुम तो एकेश्वरी रहोगी, मैं तव निकट रहूँगा।

शैलने हँसकर कहा—एकेश्वरी!

अक्षयने कहा—एकेश्वरी नहीं तो चार ईश्वरी ही सही। शास्त्रमें कहा है, अधिकन्तु न दोषाय।

---

* गुण रस्सीको भी कहते हैं—अनुवादक।

शैलने कहा—और तुम अकेले रहोगे ? तुम्हारे लिये 'अधिकन्तु' नहीं है क्या ?

अक्षयने कहा—मेरे लिये शास्त्रमें एक दूसरा पवित्र वचन है—सर्वमत्यन्तगर्हितम्।

शैल—पर जिज्जाजी, यह पवित्र वचन तो सदा नहीं माना जा सकेगा—और भी साथी आ जुटेंगे।

अक्षयने कहा—तुम लोगोंके इस एक साले (बहनोई)के स्थानमें क्या दस साला बन्दोबस्त होगा ? तब तो और नई कार्रवाई देखी जायगी। तब तक कुलीन घरानेके लड़कों बड़कोंको घरमें नहीं घुसने दूँगा।

इतनेमें नौकरने आकर खबर दी कि दो बाबू आए हैं। शैलने कहा—यह देखिए, आ ही पहुँचे। दीदी और अम्माँ भण्डारके काममें व्यस्त हैं, उन्हें फुर्सत होनेके पहले ही इन्हें किसी तरहसे बिदा कर दो।

अक्षयने पूछा—क्या इनाम मिलेगा ?

शैलने कहा—हम सब सालियाँ मिलकर तुम्हें शाली-वाहनकी पदवी देंगी।

अक्षय—शाली-वाहन दी सेकेण्ड ?

शैल—सेकेण्ड क्यों होगे ? उस शाली वाहनका नाम इतिहाससे बिलकुल विलुप्त हो जायगा। तुम होओगे शाली-वाहन दी ग्रेट !

अक्षय—क्या सच कहती हो ? मेरे राज्यकालसे क्या संसारमें नया साल प्रचलित होगा ? ऐसा कहके आडम्बरके साथ भैरवीमें गाने लगा—

महापुरुष मैं बन जाऊँगा तव प्रसादसे प्यारी,
राज-तिलक अंकित कर देगी, आँखें सुन्दर न्यारी।

शैलबाला चली गई। नौकर आज्ञा मिलनेपर दो सज्जनोंको ले आया। उनमेंसे एक बहुत लम्बा और भद्दा था। उसका शरीर दुबला-पतला था, बूट पहने था, धोती घुटनोंतक थी, आँखोंके इर्द-गिर्द गढ़े पड़ गए थे, मैलेरियाके रोगीके समान उसका चेहरा था; उसकी अवस्था बाइससे लेकर बत्तीस तक थी। दूसरा व्यक्ति छोटा नाटा था। उसकी दाढ़ी और मूँछ बहुत बढ़ी हुई थी, नाक प्यालीके समान थी, कपाल ऊपरको उठा था, रंग काला था और चेहरा गोल।

अक्षयने बड़े मित्रभावसे उठकर आगे बढ़कर बड़े ज़ोरसे 'शेक-हैण्ड' करके दोनों सज्जनोंके हाथ मरोड़ डाले और कहा—आइए मिस्टर नैथेनियल, आइए मिस्टर जेरेमिया, तशरीफ़ रखिए। अरे कोई है, बर्फ़का पानी ले आओ, तमाखू भी लेते आना।

जो आदमी दुबला-पतला था, वह विजातीय सम्भाषणसे संकुचित होकर धीमी आवाजमें बोला—मेरा नाम मृत्युञ्जय गाङ्गुली है।

नाटे व्यक्तिने कहा—मेरा नाम श्रीदारुकेश्वर मुखोपाध्याय है।

अक्षय—अरे राम! आप लोग इस जमानेमें भी ऐसे नामोंका व्यवहार करते हैं? आप लोगोंके क्रिश्चियन नाम क्या हैं?

आगुन्तक सज्जनोंको आश्चर्यचकित तथा निरुत्तर देखकर कहा—अभी शायद नामकरण नहीं हुआ है? कुछ परवा नहीं, अभी काफ़ी वक्त है!

ऐसा कहके अक्षयने अपने हुक्केकी नली मृत्युञ्जयकी तरफ़ बढ़ा दी और उसे असमञ्जसमें पड़ते देखकर कहा—वाह जनाब! मेरे सामने आप लजाते हैं? खूब! सात वर्षकी अवस्थासे लुके-छिपे तमाखू पीकर पक्का हो गया हूँ। धुआँ लग लगाकर बुद्धिमें शिकन पड़ गई है! अगर

शर्म मालूम दे, तो भले आदमियोंके सामने मैं मुँह दिखानेके भी क़ाबिल नहीं रहूँ।

इस बातसे साहस पाकर दारुकेश्वरने मृत्युञ्जयके हाथसे नली लेकर हुक्का गुड़गुड़ाना आरम्भ कर दिया। अक्षयने जेबसे बर्माकी तेज चुरट निकालकर मृत्युञ्जयके हाथमें दी। यद्यपि उसे सिगारेट पीनेका अभ्यास नहीं था, तथापि सद्यस्थापित मैत्रीकी ख़ातिर वह हलके दम लेने लगा और किसी प्रकार खाँसी रोके रहा।

अक्षयने कहा—अब कामकी बात हो जानी चाहिए! क्या राय है?

मृत्युञ्जय चुप हो रहा। दारुकेश्वरने कहा—जरूर होनी चाहिए। शुभस्य शीघ्रम्! ऐसा कहके वह हँसने लगा। उसने सोचा, यारी जम रही है।

अक्षयने गम्भीर होकर पूछा—मुर्ग़ी या मटन?

मृत्युञ्जय आश्चर्यचकित होकर सिर खुजलाने लगा। दारुकेश्वर कुछ भी न समझकर बेतरह हँसने लगा। मृत्युञ्जय क्षुब्ध तथा लज्जित होकर सोचने लगा, ये दो जने तो खूब हिलमिल गए हैं। मैं ही क्या बिल्कुल घोंघा हूँ?

अक्षयने कहा—वाह जनाब! नाम सुनकर ही आप हँस पड़े! तब तो आप गन्धसे अज्ञान हो जायँगे और पत्तलमें आनेसे तो शायद आपकी दम ही रुक जाय। कुछ भी हो, सोच-समझकर जवाब दीजिए—मुर्ग़ी या मटन?

तब दोनों समझे कि भोजनकी बातें हो रही हैं। भीरु मृत्युञ्जय निरुत्तर होकर सोचने लगा। दारुकेश्वरकी जबानमें पानी आने लगा, और उसने एक बार चारों ओर ताककर देखा।

अक्षयने कहा—डर काहेका है ? नाचने बैठे हैं और घूँघट काढ़नेकी सूझी है ! सुनकर दारुकेश्वर हँसने लगा। बोला—अच्छा मुर्गी ही सही—कटलेट, क्या राय है ?

क्षुब्ध मृत्युञ्जय साहस पाकर बोला—अच्छा मटन कौन बुरा है ? चॉप !—कहके वह अपनी बात समाप्त न कर सका।

अक्षय—दोनों आ जायँगे, घबरानेकी क्या बात है ! दुविधामें पड़कर खानेसे मजा नहीं आता !—नौकरको पुकारकर कहा—देख, चौरास्तेपर जो होटल है वहाँसे करीमुद्दीन खानसामाको ज़रा बुला तो ला !

इसके बाद अक्षयने वृद्धाङ्गुष्ठसे मृत्युञ्जयको ढकेलकर धीमी आवाज़में कहा—बियर या शेरी ?

मृत्युञ्जयने लज्जित होकर मुँह टेढ़ा कर लिया। दारुकेश्वरने अपने साथीको अरसिक कहके मन-ही-मन कोसा और कहा—ह्विस्कीका इन्तज़ाम शायद नहीं किया गया है ?

अक्षयने उसकी पीठ ठोंककर कहा—नहीं क्यों ? अभी तक मैं जीता कैसे हूँ ? ऐसा कहके वह गाने लगा—

> अभयदान दो, बात कहूँगा तब मैं अपने wish की—
> एक पाव सोडा-वाटरमें तीन पाव हो व्हिस्की।

क्षीण-प्रकृति मृत्युञ्जयने यहाँपर जबर्दस्ती हँसना अपना कर्त्तव्य समझा और दारुकेश्वरने लपककर एक किताब उठाई और उसे बजाना आरम्भ कर दिया।

अक्षय केवल दो लाइन गाकर जब थम गया तो दारुकेश्वरने कहा—उसे खतम कर डालो भैया, ऐसा कहके वह स्वयं गाने लगा—

"अभयदान दो, बात कहूँगा तब मैं अपने wish की—"

मृत्युञ्जय मन-ही-मन उसे वाहवाही देने लगा।

अक्षयने मृत्युञ्जयको धक्का देकर कहा—तुम भी गाओ भाई, चुप क्यों हो?

मृत्युञ्जयने ससङ्कोच अपनी मान-मर्यादाकी रक्षाके लिये उनका साथ दिया। अक्षय डेस्क बजाने लगा। अचानक थमकर और गम्भीर होकर उसने कहा—हाँ, असल बात तो पूछी ही नहीं गई। यहाँसे तो सब ठीकठाक हो गया है—अब आप लोग किस बातमें राजी होंगे?

दारुकेश्वरने कहा—हमें विलायत भेजना होगा।

अक्षयने कहा—वह तो होगा ही। बिना तार काटे क्या शेम्पेनका काग खुलता है? देशमें रहकर आपकी प्रकृतिके लोगोंकी बुद्धि दबी रहती है। बन्धन कटते ही वह एकबारगी नाक, मुँह और आँखोंमेंसे उछल पड़ेगी।

दारुकेश्वरने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—इतना जरूर कर दीजिए भैया, समझ गए न?

अक्षयने कहा—यह कौनसी बड़ी बात है! बप्तिस्मा आज ही तो होगा?

दारुकेश्वरने सोचा कि यह दिल्लगी समझमें नहीं आई। पूछा—यह क्या?

अक्षयने विस्मयका भाव दिखलाकर कहा—क्यों यह तो पहले ही तय हो चुका है। रेवरेण्ड विश्वास आज ही रातको आ रहे हैं। बिना बप्तिस्मा हुए तो ईसाई विधिसे विवाह नहीं हो सकेगा।

मृत्युञ्जयने अत्यन्त भीत होकर कहा—ईसाई विधिसे कैसा जनाब?

अक्षयने कहा—आप तो चौंक उठे हैं! नहीं, यह नहीं होगा—जैसे भी हो आज रात ही बतिस्मा हो जाना चाहिए। मैं नहीं छोड़नेका।

मृत्युञ्जयने पूछा—आप लोग क्या ईसाई हैं?

अक्षय—रहने दीजिए यह ढोंग! जैसे हज़रत कुछ जानते ही नहीं!

मृत्युञ्जय डरता हुआ बोला—जनाब, हम हिन्दू हैं, जातिके ब्राह्मण हैं, अपनी जाति हम नहीं खो सकते!

अक्षयने झल्लाकर कहा—जाति कैसी साहब! इधर आप करीमुद्दीनके हाथकी मुर्गी खायँगे और विलायत जायँगे, और फिर भी जातिकी हेकड़ी!

मृत्युञ्जयने सकपकाकर कहा—चुप! चुप! ज़रा चुप रहिए, कोई सुन पावेगा!

दारुकेश्वर बोला—ठहरिए, घबराइए मत! जरा परामर्श कर लें। ऐसा कहके वह मृत्युञ्जयको अलग एक कोनेमें ले गया और बोला—अरे भाई, विलायतसे लौटनेपर प्रायश्चित्त तो करना ही होगा, तब डबल प्रायश्चित्त ही सही! यह सुअवसर हाथसे जाने दोगे तो विलायत फिर कभी नहीं जा सकोगे! देखते नहीं, कोई ससुर राज़ी नहीं हुआ! इसके अलावा, किरस्तानके हुक्केमें जब तमाखू पी चुके तो अब किरस्तान होनेमें क्या बाकी रहा! यह कहके वह अक्षयके पास आकर बोला—विलायत भेजनेकी बात तो पक्की है न? अगर ऐसा है तो किरस्तान बननेमें हमें कोई एतराज़ नहीं।

मृत्युञ्जयने कहा—पर आज रात ठहर जाइए।

दारुकेश्वरने कहा—अगर होना ही है तो झटपट हो जाना ही अच्छा। मैं तो पहले ही कह चुका हूँ—शुभस्य शीघ्रम्।

इतनेमें महिलाएँ पर्देकी आड़में आकर खड़ी होती हैं। दो थालोंमें फल, मिठाई, पूरी और बरफ़का पानी लिये नौकर उपस्थित होता है। दारुकेश्वरने दुःखित होकर कहा—इस अभागेकी तक़दीरमें क्या मुर्गी आकर उड़ गई? कटलेट कहाँ है?

अक्षयने धीमी आवाज़में कहा—आज यही सही!

दारुकेश्वरने कहा—नहीं, ऐसा नहीं होगा! आशा देकर आप निराश करते हैं! ससुरके घर आकर क्या मटन चॉप भी नहीं मिलेगा? और यह बरफ़का पानी मुझे नुकसान पहुँचाता है। मुझे सर्दीकी शिकायत रहती है। यह कहके वह गाने लगा—

अभयदान दो, बात कहूँगा तब मैं अपने wish की।

अक्षय मृत्युञ्जयको धक्का देकर कहने लगा—तुम भी गाओ न! चुप क्यों हो? वह बेचारा कुछ तो भयके कारण और कुछ लज्जाके मारे धीमी आवाज़से दारुकेश्वरका साथ देने लगा। गानका उल्लास थमनेपर अक्षयने भोजन-पात्र दिखाकर पूछा—तब क्या सचमुच ही इससे काम नहीं चलेगा?

दारुकेश्वरने उत्तेजित होकर कहा—नहीं साहब, यह सब बीमार आदमियोंका पथ्य है, यह कैसे खाया जा सकता है! मुर्गी न खानेसे ही तो भारतका नाश हुआ! यह कहके वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। अक्षयने उसके कानके पास जाकर गाना शुरू कर दिया—

कब तक मेरे भारत प्यारे!
दाल-भातका पथ्य रहेगा?

गीत सुनकर दारुकेश्वरने भी उत्साहपूर्वक उसे गाना शुरू कर दिया और मृत्युञ्जय भी अक्षयके धक्केके ज़ोरसे धीमी आवाज़में उसका साथ देने लगा।

अक्षयने फिर गाना शुरू किया—

हाय पड़ रहा है भारतमें नित्य अन्नका काल,
मुर्गी-मटन हजमकर, ह्विस्की पीकर रहो निहाल।

दारुकेश्वरने झट उमङ्गमें आकर इस पदका अनुसरण किया और अक्षयकी उत्तेजना पाकर मृत्युञ्जय भी किसी तरह साथ देनेकी चेष्टा करने लगा।

अक्षयने फिर आरम्भ किया—

चलो देवता, चलो हटो, निकलो तुम बाहर।
आओ मियाँ करीम, चलो दाढ़ी फहराकर।

इधर उत्साहपूर्वक गीत चल रहा था, उधर दरवाजेसे कानाफूसीका शब्द सुना जा रहा था। अक्षय भले आदमीकी तरह बीच-बीचमें उस तरफ़ नज़र फेर लेता था।

इतनेमें मैला झाड़न हाथमें लिए करीमुद्दीन आया और सलाम करके खड़ा हो गया। दारुकेश्वरने उत्साहित होकर कहा—क्यों चाचा! आज क्या क्या खाना पकाया है?

उसने एक बड़ा लम्बा-चौड़ा फ़र्द बतलाया। दारुकेश्वरने कहा—बुरी चीज़ तो कोई भी नहीं मालूम देती भैया! (अक्षयसे) क्यों साहब, आपकी क्या राय है? मेरे ख्यालमें तो इसमें कोई चीज़ ऐसी नहीं है जिसके लिये मनाही की जाय। क्यों?

अक्षयने दरवाजेकी तरफ़ आँखें मटकाकर कहा—जैसी आपकी राय हो!

दारुकेश्वरने कहा—मेरी रायमें तो 'ब्राह्मणेभ्यो नमः' कहके सभी चीज़ोंका आदरपूर्वक स्वागत किया जाय।

अक्षय—बेशक। वे तो सब ही पूज्य हैं!

करीमुद्दीन सलाम करके चला गया। अक्षयने आवाज़ चढ़ाकर कहा—तब आप लोग आज रात ही किरस्तान होना चाहते हैं?

भोजनके भरोसेसे प्रसन्नचित्त होकर दारुकेश्वरने कहा—मेरा तो सिद्धान्त ही यह है कि शुभस्य शीघ्रम्। आज ही किरस्तान बनूँगा, अभी किरस्तान बनूँगा। पहले किरस्तान बनूँगा तब और बातें होंगी। अब पालकका साग और उड़दकी दाल खाकर प्राण नहीं बचेंगे। अपना पादरी अभी बुला लाइए। यह कहके वह उच्च स्वरसे गाने लगा—

चलो देवता, चलो हटो, निकलो झट बाहर,
आओ मियाँ करीम, चलो दाढ़ी फहराकर।

नौकरने आकर अक्षयके कानमें कहा—आपको माँजी बुला रही हैं।

अक्षय जब दरवाज़ेके पास गया तो जगत्तारिणीने कहा—माजरा क्या है?

अक्षयने गम्भीर होकर कहा—यह सब बातें पीछे होंगी। इस वक़्त वे लोग ह्रिस्की माँग रहे हैं, बतलाओ क्या करूँ? तुम्हारे पाँवमें मालिश करनेके लिए जो ब्राण्डी आई थी, उसमेंसे क्या थोड़ी बहुत बची है?

जगत्तारिणीने आश्चर्यान्वित होकर कहा—कहते क्या हो बेटा! उन्हें ब्राण्डी पीनेको दोगे?

अक्षयने कहा—क्या करूँ अम्माँजी, उनमेंसे एक आदमी ऐसा है जिसे पानी पीनेसे ज़ुकाम हो जाता है, दूसरा ऐसा है जो विना शराब पिए मुँहसे आवाज ही नहीं निकाल सकता।

जगत्तारिणीने पूछा—किरस्तान होनेकी क्या बात कर रहे हैं?

अक्षयने उत्तर दिया—वे कहते हैं कि हिन्दू बने रहनेसे खाने-पीनेकी बड़ी दिक़्क़त रहती है, पालकका साग और उड़दकी दाल खाकर उनकी तबीयत ख़राब हो जाती है।

जगत्तारिणीने विस्मयान्वित होकर कहा—तो उन्हें आज रातको ही मुर्गी खिलाकर किरस्तान कर दोगे क्या ?

अक्षयने कहा—अगर वे लोग नाराज़ होकर चले जाँय, तो ऐसे दो सुन्दर वरोंसे हाथ धोना पड़े। इसी लिये जो कुछ कहते हैं, सुनना पड़ रहा है; यहाँ तक कि उनकी खातिर मुझे भी शराब पीनी पड़ेगी।

पुरबालाने कहा—उन्हें बिदा करो, बिदा करो! अभी बिदा कर दो!

जगत्तारिणीने भी व्यस्त होकर कहा—नहीं बेटा, यहाँ मुर्गी खिलाना न बनेगा; तुम उन्हें बिदा कर दो। मैंने बेकार रसिक चाचासे वरोंकी खोज करनेके लिये कहा था। उनसे क्या कभी कोई काम सिद्ध हो सकता है ?

महिलाएँ चली गईं। अक्षयने कमरेमें लौटकर देखा कि मृत्युञ्जय भागनेकी चेष्टा कर रहा है और दारुकेश्वर उसका हाथ पकड़कर खींचा-तानी करके उसे बिठानेकी चेष्टा कर रहा है। अक्षयकी अनुपस्थितिमें मृत्युञ्जय आगा-पीछा सोचकर घबरा उठा है। अक्षय ज्योंही लौटकर आया त्योंही मृत्युञ्जय क्रोधित स्वरसे बोल उठा—नहीं जनाब, मैं किरस्तान नहीं हो सकता, मुझे ब्याह करनेकी जरूरत नहीं।

अक्षयने कहा—तो जनाब कौन आपके पाँव पकड़ता है !

दारुकेश्वरने कहा—परन्तु मैं राजी हूँ।

अक्षय—राजी हैं तो गिर्जेमें जाइए! मेरे पुरखोंने कभी किरस्तान बनानेका पेशा नहीं किया।

दारुकेश्वरने कहा—अभी आप किसी विश्वास महाशयकी बात कह रहे थे—

अक्षय—अगर कहें तो उनका पता लिखे देता हूँ।

दारुकेश्वर—और विवाहका क्या होगा?

अक्षय—वह इस वंशमें नहीं होगा।

दारुकेश्वर—तब आप क्या अबतक मजाक कर रहे थे? खाना भी क्या—

अक्षय—वह भी यहाँ नहीं होगा।

दारुकेश्वर—होटलमें भी नहीं?

अक्षय—हाँ, यह हो सकता है।—कहके उसने अपने मनीबेगसे कुछ रुपए निकालकर दोनोंको बिदा कर दिया।

इसके बाद नृपका हाथ पकड़कर नीरबाला वसन्तकी आकस्मिक हवाके झकोरेके समान आ उपस्थित हुई। उसने कहा–जिज्जाजी, दीदी तो दोनोंमेंसे एकको भी नहीं छोड़ना चाहती।

नृपने उसके गालपर उँगलीसे दो तीन हलकी चोटें मारकर कहा—फिर झूठ बकती है?

अक्षय—घबराओ मत, झूठ और सचका अन्तर मैं थोड़ा बहुत समझता हूँ।

नीरू—अच्छा जिज्जाजी, ये दो वर क्या रसिक दादाकी रसिकताके फल हैं या हमारी सँझली दीदीकी करामात?

अक्षय—क्या बन्दूककी सभी गोलियाँ निशानेपर ही जाकर लगती हैं? विवाहके देवता 'टार्जेट' का अभ्यास कर रहे थे, इन दोनोंमें चोट नहीं लगी। पहले-पहल दो-एक चोटें व्यर्थ जाती ही हैं। इस अभागेके पकड़े जानेके पहले तुम्हारी दीदीकी मछली मारनेकी नावमें अनेक जलचरोंने ठोकरें मारी थीं; पर वंशीका काँटा मेरे ही कपालमें चुभा। ऐसा कहके उसने कपालको हाथसे पीट लिया।

नृप—जिजाजी, क्या आजसे हर रोज ही विवाह-देवताकी प्रेक्टिस चलेगी ! अगर ऐसा होगा तब तो बचना मुश्किल हो जायगा।

नीरू—क्यों इतना दुःख करती है बहन ! क्या रोज़ ही निशाना चूक जायगा ! एक न एक दिन ठीक जगह चोट पड़ेगी ही।

[रसिकका प्रवेश।]

नीरू—रसिक दादा, आजसे हम भी तुम्हारे लिए कन्याकी खोज करेंगी।

रसिक—यह तो ख़ुशीकी बात है।

नीरू—हाँ, ख़ुशी कैसी होती है, उसका मज़ा चक्खोगे ! तुम ख़ुद फूसके झोपड़ेमें रहकर दूसरोंके घरमें आग लगा देना चाहते हो ! क्या हमारे हाथमें पलीता नहीं है ? हमारे पीछे अगर पड़ोगे तो हम तुम्हारी दो-दो शादियाँ करा देंगी जिनसे तुम्हारे गंजे सिरमें जो थोड़ेसे बाल बचे हैं, वे भी नुच जायँगे।

रसिक—देखो, दो पूरे जानवर ले आया था, इसलिये ख़ैर रही, नहीं तो अगर आधे ही जानवर होते तो आफ़त थी ! जो जानवर पहिचाना नहीं जाता है, जानवरसा नहीं दिखता है, वही सबसे ज्यादा खतरनाक होता है।

अक्षय—तुम्हारा कहना दुरुस्त है। मुझे भी सन्देह था। पीठपर ज़रा हाथ लगानेसे ही एकदम दुम हिल उठी। पर अम्माँजी क्या कहती हैं ?

रसिक—वह जो कुछ कह रही हैं वह पाँच आदमियोंको बुलाकर सुनानेके लायक़ नहीं है। इसलिए उसे मैं भीतर ही छिपाए रखता हूँ। कुछ भी हो, अन्तको यह स्थिर हुआ है कि वह काशीमें अपने भाञ्जेके

पास चली जायँगी, वहाँ वरोंका भी पता चला है और तीर्थदर्शन भी हो जायगा।

नीरू—क्या सच कहते हो दादा? तब क्या यहाँ नित्य नये नमूने देखनेको न मिलेंगे?

नृप—तुझे क्या अभी और हवस है?

नीरू—यह क्या हवसकी बात है? इससे तो शिक्षा मिलती है। दररोज बहुतसे दृष्टान्त देख-देखकर असली बात समझनेमें आसानी हो जायगी। जिसके साथ तेरा ब्याह होगा, उस प्राणीको समझनेमें कठिनाई न पड़ेगी।

नृप—अपने प्राणीको तू समझ लेना, मेरे लिए चिन्ता न कर।

नीरू—अच्छी बात है—तू अपने लिए सोचाकर मैं अपने लिए—पर रसिक दादाको हमारे लिए सोचनेकी ज़रूरत नहीं।

नृप नीरूको बलपूर्वक खींच ले गई। शैलबालाने कमरेमें आते ही कहा—रसिक दादा, तुम अम्माँके साथ काशी नहीं जाने पाओगे—मुझे तुम्हारे साथ चिरकुमार सभाका सदस्य बनना है—आवेदन पत्रके साथ दस रुपए प्रवेशके दिए बैठी हूँ।

अक्षयने कहा—अम्माँजीके साथ काशी जानेके लिये मैं एक आदमी ठीक कर दूँगा, इसके लिये चिन्ता न करो।

शैल—वाह जिज्जाजी, वाह! तुमने भी उन्हें खूब बन्दर बनाकर छोड़ा!—मुझे तो बेचारोंपर तरस आता था!

अक्षय—बन्दर कोई नहीं बना सकता शैल, उसे परमा प्रकृति स्वयं बना देती है। भगवान्की विशेष कृपा चाहिए! कविकी तरह! तुम कहो या कविता कहो, भीतर न हो, तो वह कभी ज़ोर-ज़बरदस्तीसे खींचकर नहीं निकाली जा सकती।

पुरबालाने आकर केरोसीन लैम्पको हिला-डुलाकर कहा—नौकर कैसी रोशनी रख गया है; लैम्प टिमटिमा रहा है। उसे बार बार कहके मैं हार गई।

अक्षय—वह जानता है कि अँधेरेमें मैं ज्यादा अच्छा दिखलाई देता हूँ।

पुरबाला—रोशनीमें नहीं? यह नई बात कैसी!

अक्षय—मेरा कहनेका मतलब यह है कि नौकर मुझे चाँद समझे बैठा है!

पुरबाला—अच्छा, यह बात है! तब तो उसकी तनख्वाह बढ़ा दो। पर रसिक दादा, आज तुमने भी अच्छा तमाशा दिखलाया!

रसिक—वर बहुतेरे पाए जाते हैं, पर सभी विवाह-योग्य नहीं होते, इसी बातका एक सामान्य उदाहरण तुम्हें दिखलाया है।

पुर०—यह उदाहरण न दिखलाकर दो एक विवाह-योग्य वरोंका उदाहरण दिखाते तो क्या बुरा होता?

शैल—यह भार मैंने अपने ऊपर लिया है, दीदी।

पुर०—यह मुझे माल्रुम था कि तुम और तुम्हारे जिजाजीके बीच न माल्रुम क्या साठ-गाँठ हो रही है, सो उससे कोई न कोई अनोखा काण्ड ज़रूर ही होगा।

अक्षय—किष्किन्धाकाण्डकी बन्दर-लीला तो आज हो गई।

रसिक—लङ्काकाण्डकी भी तैयारी हो रही है, चिरकुमार-सभाकी स्वर्णलङ्कामें आग लगानेका इरादा है।

पुर०—इस काण्डमें शैल कौन है?

रसिक—और कोई भी हो, पर हनुमान नहीं है।

अक्षय—वह स्वयं अग्नि है।

रसिक—एक आदमी उसे दुममें लगाकर ले जायगा।

पुर०—मैं कुछ नहीं समझ पाती हूँ। शैल, तू क्या चिरकुमार-सभामें जायगी?

शैल—मुझे तो सभ्य बनना है न!

पुर०—क्या बेजा बकती है! क्या औरतें कभी सभ्य बनती हैं!

शैल—आजकल औरतोंने भी सभ्यता सीख ली है। इसी लिये मैं साड़ी छोड़कर अचकन पहनूँगी।

पुर०—समझ गई। गुप्त वेशमें सभ्य बनने जा रही है। बाल तो तू कटवा ही चुकी है, यही बाकी रह गया था। तुम लोगोंकी जैसी खुशी हो, करो। मेरा इन बातोंसे कुछ सरोकार नहीं।

अक्षय—नहीं, नहीं, तुम हरगिज इस दलमें शामिल न होना! और जिसकी खुशी है, वह मर्द बने, मेर भाग्यमें तुम सदा स्त्री बनकर ही रहो। नहीं तो 'ब्रीच ऑफ़ काण्ट्रेक्ट' होगा! वह भयङ्कर मुक़द्दमा है! यह कहके वह गाने लगा—

> **मेरे बड़े पुराने चाँद!**
> **मुझे करो तुम इसी रूपसे चिर-जीवन उन्माद!**
> **सुधा मधुर तव, नित नव हास, अहा, बुझाता दिलकी प्यास!**
> **नया चकोर न पावे कोई, यह तव मधुर प्रसाद!**

पुरबाला नाराज़ होकर चली गई। अक्षयने शैलबालाको दिलासा देते हुए कहा—घबरानेकी बात नहीं है! गुस्सा निकल जानेपर ही दिल साफ़ होगा—कुछ पछतावा भी होगा। और वही सुयोगका समय है—

रसिक—**कोपो यत्र भ्रुकुटि-रचना निग्रहो यत्र मौनम्,**
यत्रान्योन्यस्मितमनुनयं, यत्र दृष्टिः प्रसादः।

शैल—रसिक दादा, तुम तो श्लोक झाड़ने लगे—कोप क्या चीज़ है, यह बात जिजाजी कहीं समझ बैठेंगे।

रसिक—मैं तो बदली करनेके लिये राजी हूँ ! मुखोपाध्याय महाशय अगर श्लोक झाड़ते और मेरे ऊपर ही अगर कोपका प्रकोप होता, तो इस फूटे कपालको सोनेसे बाँध रखता। पर जलपानकी ये दो रकाबियाँ तो मान किये हुए नहीं हैं ?, बैठकर भोग लगानेमें तुम्हें शायद एतराज नहीं होगा ?

अक्षय—ठीक यही बात मैं भी सोच रहा था।

दोनों खानेके लिये बैठ गए। शैलबाला पँखा झलने लगी।

४

भोजनोपरान्त शैलबालाने कहा जिज्जाजी !

अक्षयने अत्यन्त त्रस्त होनेका भाव दिखलाकर कहा—फिर जिज्जाजी ! इन बालखिल्य मुनि लोगोंके ध्यानभङ्गके मामलेमें मुझे क्यों घसीटती हो ?

शैलबाला—ध्यानभङ्ग आप क्यों करने लगे ! हम करेंगी। पर मुनिकुमारोंको इसी मकानमें लाना होगा।

अक्षय आँखें फाड़कर बोला—सारी सभाको क्या यहाँ उखाड़कर लाना होगा ? जितने असाध्य काम हैं, वे सब क्या इस एकमात्र 'जिज्जाजी' के द्वारा ही कराए जायँगे ?

शैलबालाने मुस्कुराकर कहा—महावीर होनेमें यही तो आफ़त है ! जब गन्धमादनका प्रयोजन हुआ था तब नल, नील और अङ्गदको तो किसीने भी न पूछा था !

अक्षयने गरजकर कहा—अरी मुँहझौंसी, त्रेतायुगके मुएको छोड़कर क्या और कोई उपमा तुझे याद नहीं आई ? इतना प्रेम है !

शैलने कहा—हाँ, हाँ इतना प्रेम है!

अक्षय गाने लगा—

जले दिलमें हमारे हा! जला मुँह ही समाता है!
पड़े हैं लोग इतने पर वही मुखड़ा सुहाता है!

खैर, यही सही! कुछ पतङ्गोंको शिखाके मुँहकी ओर खदेड़ लाऊँगा। अच्छा झटसे अपने हाथका लगा हुआ एक पान तो ले आओ!

शैल—क्यों दीदीके हाथका—

अक्षय—दीदीका हाथ तो मैं ले ही चुका हूँ, नहीं तो पाणिग्रहण-के क्या माने हैं? अब अन्य पद्महस्तोंके प्रति नज़र डालनेका मौक़ा मिला है!

शैल—अच्छा जनाब! पद्महस्त तुम्हारे पानमें इतना चूना डाल देंगे कि झुलसा हुआ मुँह और ज्यादा झुलस जायगा!

अक्षय गाने लगा—

पड़ती जिसपर दैवी मार
मरता है वह सौ-सौ बार;
जलता है पतङ्ग फिर भी
करता है दीपकको प्यार।

शैल—जिज्जाजी, यह कागजकी पुड़िया काहेकी है?

अक्षय—तुम्हारे सभ्य बननेका आवेदन-पत्र और प्रवेशिकाके लिए दस रुपयेका नोट, दोनों जेबमें ही पड़े थे, धोबीने धोकर इन्हें इतना साफ़ बना डाला है कि एक अक्षर भी नहीं दिखलाई देता। मालूम पड़ता है वह पाजी स्त्री-स्वाधीनताका घोर विरोधी है, इसी लिये तुम्हारा यह पत्र उसने आद्योपान्त संशोधित कर डाला है।

शैल—यह बात है!

अक्षय—तुम चारोंने मिलकर मेरी स्मरण-शक्तिको इस तरह घेर रक्खा है कि और कोई बात याद रखनेकी गुंजाइश ही नहीं रही है !—

सभी कुछ भूल गया है मन।
नहीं भूल सकता है पर यह सुन्दर तव चन्द्रानन ॥

१० नम्बर मधुमिस्त्रीकी गलीमें पहले मञ्जिलके एक कमरेमें चिरकुमार-सभाका अधिवेशन होता है। इसी मकानमें सभाके सभापति चन्द्रमाधव बाबू रहते हैं। वह ब्राह्म कॉलेजके अध्यापक हैं। देशके काममें उनका बड़ा उत्साह रहता है। मातृभूमिकी उन्नतिके लिये नाना प्रस्ताव उनके मस्तिष्कमें उपजते रहते हैं। शरीर उनका कृश पर कठिन है। कपाल चौड़ा है। दोनों बड़ी-बड़ी आँखें अन्यमनस्क भावनाओंसे पूर्ण रहती हैं। पहले इस सभाके बहुत सभ्य थे। अब सभापतिको छोड़कर केवल तीन ही जन इसके सभ्य रह गए हैं। दलभ्रष्ट लोग विवाह करके गृहस्थ बनकर रोजगारमें लग गए हैं। अब वे लोग चन्देका रजिस्टर देखते ही पहले तो हँसीमें टालते हैं, पर जब इतनेपर भी चन्देवाला खड़ा रहता है तो उसे गाली देने लगते हैं। अपने दृष्टान्त स्मरण करके वे देशहितैषियोंके प्रति अब अत्यन्त उदासीन हो उठे हैं।

विपिन, श्रीश तथा पूर्ण, ये तीन सभ्य कॉलेजमें पढ़ते हैं और अभी संसार-चक्रमें उन्होंने प्रवेश नहीं किया है। विपिन फुटबॉल खेलता है, उसका शरीर अत्यन्त बलिष्ठ है। वह किस समय पढ़ता-लिखता है, इसकी ख़बर किसीको नहीं रहती; पर इम्तहान झटपट पास कर लेता है। श्रीश बड़े आदमीका लड़का है। स्वास्थ्य उसका ठीक नहीं रहता, इसलिये उसके माँ-बाप उसे लिखने-पढ़नेके लिये विशेष उत्तेजित नहीं करते। वह अपनी ख़ामख़यालीमें ही मस्त रहता है। विपिन और श्रीशकी मित्रता अविच्छेद्य है।

पूर्ण गौरवर्ण, इकहरा, लघुगामी, क्षिप्रगति और द्रुतभाषी है। सभी विषयोंमें उसका बड़ा ध्यान रहता है। उसका चेहरा देखकर ऐसा मालूम होता है कि वह दृढ़सङ्कल्प है और कामका आदमी है।

वह चन्द्रमाधव बाबूका छात्र था। अच्छी तरहसे इम्तहान पास करके वकालतके ज़रिए अच्छी तरह जीविका निर्वाह करनेकी आशासे वह रात जागकर किताबें पढ़ा करता था। देशकार्यमें फँसकर अपना कार्य नष्ट करनेका विचार उसने कभी नहीं किया था। चिरकौमार्य उसे बहुत मनोहर नहीं मालूम देता था। वह नित्य नियमित रूपसे सन्ध्याके समय चन्द्रबाबूके पास आकर नोट लिख ले जाता था। मन ही मन वह इस बातको अच्छी तरहसे जानता था कि चिरकौमार्य व्रत ग्रहण न करनेसे और अपना भविष्य नष्ट करनेके लिये बिलकुल राजी न होनेसे उसके प्रति चन्द्रमाधव बाबूकी श्रद्धा नामको भी नहीं है! पर इसके लिये उसे कभी दुःख नहीं हुआ। इसके बाद क्या हुआ, यह सभीको विदित है।

उस दिन सभा बैठी हुई थी। चन्द्रमाधव कह रहे थे—हमारी इस सभाकी सभ्य-संख्या अल्प होनेसे हताश होनेका कारण नहीं है।

उनकी बात ख़तम भी न होने पाई थी कि रुग्णकाय उत्साही श्रीश बोल उठा—हताश! यह तो हमारी सभाका गौरव है! इस सभाका महत् आदर्श और कठिन विधान क्या सर्वसाधारणके उपयुक्त है! हमारी सभा अल्प लोगोंकी ही सभा है।

चन्द्रमाधव बाबूने कार्यविवरणका रजिस्टर अपनी आँखोंके सामने रखकर कहा—पर हमारा आदर्श महत् और विधान कठिन है, इसलिये हमें विनय तथा नम्रताकी रक्षा करनी होगी। हमें सर्वदा यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि हमारा सङ्कल्प साधनके योग्य नहीं भी हो सकता है।

सोचनेकी बात है कि पहले हमारी सभामें ऐसे अनेक सभ्य थे जो शायद हमसे सभी बातोंमें महत्तर थे, पर वे भी अपने सुख और संसारके प्रबल आकर्षणसे एक एक करके लक्ष्य-भ्रष्ट हो गए। हम थोड़ेसे व्यक्ति बच रहे हैं। हमारे रास्तेमें भी प्रलोभन न जाने कहाँ हमारी प्रतीक्षा कर रहा है, इसका ठिकाना नहीं है। इस कारण हमें दम्भ त्याग देना पड़ेगा, और किसी प्रकारकी शपथसे भी हम प्रतिज्ञाबद्ध नहीं होना चाहते हैं। हमारा मत केवल यही है कि किसी भी समय महत् चेष्टाको मनमें स्थान न देनेकी अपेक्षा चेष्टा करके असफल होना अच्छा है।

बगलवाले कमरेमें कुछ खुले हुए दरवाजेकी आड़में एक श्रोत्री इस बातसे विचलित हो उठी और उसके अञ्चलमें बँधे हुए चाभियोंके गुच्छे-की दो-एक चाभियाँ ज़रा ठुन-ठुन करके बज उठीं, इस बातकी ओर पूर्णके अतिरिक्त और किसीका ध्यान नहीं गया।

चन्द्रमाधव बाबू कहने लगे—अनेक लोग हमारी सभाकी हँसी उड़ाते हैं, अनेक लोग कहते हैं कि तुम लोग देशका काम करनेके लिये कौमार्य-व्रत ग्रहण कर रहे हो, पर सभी अगर इस महती प्रतिज्ञामें आबद्ध हो जाँय तो पचास सालके बाद देशमें ऐसा कौन आदमी शेष रहेगा, जिसके लिये कोई काम करनेकी आवश्यकता रहेगी? मैं सदा नम्रतापूर्वक निरुत्तर रहके इन सब परिहासोंको सह लेता हूँ; पर क्या इसका कोई उत्तर नहीं है?—ऐसा कहके वह अपने तीन सदस्योंकी ओर ताकने लगे।

पूर्णने नेपथ्यनिवासिनीको स्मरण करके उत्साहपूर्वक कहा—है क्यों नहीं? सभी देशोंमें कुछ ऐसे मनुष्य वर्तमान हैं, जो संसारी और गृहस्थी होनेके लिये पैदा नहीं हुए हैं। उनकी संख्या अल्प है। उन अल्पसंख्यक लोगोंको आकर्षित करके एक उद्देश्य-बन्धनमें बाँधनेके

लिये ही हमारी यह सभा है—समस्त जगत्के लोगोंको कौमार्यव्रतमें दीक्षित करनेके लिये नहीं। हमारा यह जाल बहुत लोगोंको पकड़ेगा, पर अधिकांश लोगोंको परित्याग करेगा, और अन्तको दीर्घ परीक्षाके पश्चात् दो-चार लोग ही शेष रह जायँगे। यदि कोई पूछे कि वह दो-चार लोग क्या तुम्हीं हो? तब स्पर्द्धाके साथ निश्चयपूर्वक कौन 'हाँ' कह सकता है? इसमें सन्देह नहीं कि हम लोग जालमें आकृष्ट हुए हैं, पर अन्त तक टिके रहेंगे या नहीं, यह बात अन्तर्यामी ही बतला सकते हैं। किन्तु हम लोग टिके रहें या न रहें, एक एक करके स्खलित हों या न हों, कुछ भी हो, इस सभाकी दिल्लगी उड़ानेका अधिकार किसीको नहीं है। यदि केवल हमारे सभापति महाशय ही अकेले स्थिर रहें, तो भी हमारा यह परित्यक्त सभाक्षेत्र उस एक मात्र तपस्वीके ही तपःप्रभावसे पवित्र और उज्ज्वल रहेगा, और उसके समस्त जीवनकी तपस्याका फल देशके लिये कभी व्यर्थ नहीं होगा।

कुण्ठित सभापति कार्य-विवरणका रजिस्टर फिर अपनी आँखोंके निकट लाकर अन्यमनस्क होकर न मालूम क्या देखने लगे। पर पूर्णकी यह वक्तृता यथास्थान यथावेगसे जा पहुँची। चन्द्रमाधव बाबूकी एकाकी तपस्याकी बातसे निर्मलाकी आँखें डबडबा आई और उस विचलित बालिकाकी चाभियोंके गुच्छेकी झनकने उत्कर्ण पूर्णको पुरस्कृत कर दिया।

विपिन अबतक चुप था। अब वह भी अपने जलद-मन्द्र गम्भीर स्वरमें बोल उठा—हम लोग इस सभाके योग्य हैं या अयोग्य, इस बातका परिचय तो समय पर ही मिलेगा, पर काम करना यदि हमारा उद्देश्य है तो वह किसी समय अवश्य आरम्भ कर दिया जाना चाहिए। हमारा प्रश्न यह है—क्या करना होगा?

चन्द्रमाधवने उत्साहित होकर कहा—इस प्रश्नकी प्रतीक्षा ही आजतक हम लोग करते आए हैं कि क्या करना होगा? यह प्रश्न हममेंसे प्रत्येक व्यक्तिको दंशन करके अधीर कर डाले, यही मेरी इच्छा है। मित्रो, काम ही एकमात्र ऐक्यका बन्धन है। जो लोग एक साथ काम करते हैं वे ही एक हैं। इस सभामें जब तक हम लोग एक साथ मिलकर एक विशेष कार्यमें नियुक्त न होंगे, तब तक हम यथार्थमें एक न हो सकेंगे। अतएव विपिन बाबूने आज जो यह प्रश्न किया है कि क्या करना होगा, इस प्रश्नको शान्त नहीं होने देना होगा। सभ्य महाशय-गण, आप लोग उत्तर दें, क्या करना होगा?

दुर्बल-देह श्रीश अस्थिर होकर बोल उठा—यदि आप मुझसे पूछें कि क्या करना चाहिए, तो मैं कहूँगा कि हम सबको सन्यासी होकर भारतके देश-देशमें, ग्राम-ग्राममें देशहित-व्रत लेकर घूमना होगा, अपने दलको पुष्ट करना होगा और अपनी इस सभाको सूक्ष्म सूत्रके समान बनाकर उसमें समस्त भारतवर्षको गूँथ देना होगा।

विपिनने मुस्कुराकर कहा—इसके लिये तो अभी बहुत समय है; जो कलहीसे प्रारम्भ किया जा सकता है, ऐसा कोई काम बतलाओ। मैं प्रस्ताव करता हूँ कि हममेंसे प्रत्येक व्यक्तिको दो-दो गरीब छात्रोंका पालन करना चाहिए और उनके पढ़ने-लिखने तथा शरीर-मनकी चर्चाका सारा भार अपने ऊपर लेना चाहिए।

श्रीशने कहा—बस यही तुम्हारा काम है! इसीके लिये क्या हमने सन्यास-धर्म ग्रहण किया है? अगर बच्चोंका भार ही अपने ऊपर लेना होगा तो अपने बच्चोंका क्यों न लेंगे? उन्होंने क्या कसूर किया है?

विपिनने खीझकर कहा—अगर इसी बातका ख्याल किया जाय, तो सन्यासीके लिये तो कोई कर्म ही नहीं है! कर्म जो कुछ है भी, वह है भिक्षा, भ्रमण और भगतपनका पाखण्ड!

श्रीशने बिगड़कर कहा—मैं देख रहा हूँ कि हमारी सभामें कोई कोई सज्जन ऐसे हैं जिनकी इसके महत् उद्देश्यके प्रति नामको भी श्रद्धा नहीं है। वे जितनी जल्दी इस सभासे अलग होकर सन्तान-पालनमें लग जायँ, उतना ही अच्छा !

विपिनने तमतमाते हुए कहा—अपने सम्बन्धमें मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता, पर इस सभामें कोई कोई ऐसे भी हैं जो सन्यास-ग्रहणकी कठोरता और सन्तान-पालनके लिये त्याग-स्वीकार, इन दोनोंके ही अयोग्य हैं, उन्हें—

चन्द्रमाधव बाबूने अपनी आँखोंके आगेसे कार्य-विवरणके रजिस्टरको हटाकर कहा—उपस्थित प्रस्तावके सम्बन्धमें पूर्ण बाबूकी सम्मति मालूम होनेसे मैं अपनी राय दे सकूँगा।

पूर्णने कहा—आज एक प्रस्ताव सभाके ऐक्यके सम्बन्धमें विशेष रूपसे उपस्थित किया गया है। पर कार्यके प्रस्तावसे ऐक्यके लक्षण कैसे परिस्फुट हो रहे हैं, यह बात किसीको जतलानेकी आवश्यकता नहीं है। इस अवसरपर अगर मैं एक तृतीय मत प्रकट कर बैठूँ, तो विरोधानलमें तृतीय आहुति पड़ जायगी। इसलिये मेरा प्रस्ताव यह है कि स्वयं सभापति महाशय हमारा कार्य निर्दिष्ट कर दें और हम उसे शिरोधार्य करके विना किसी विचारके पालन करें। कार्य-साधन और ऐक्य-साधन का यही एक मात्र उपाय है।

बग़लवाले कमरेमें एक रमणी विचलित हो उठी और उसकी चाभियोंका गुच्छा झनझना करके बज उठा।

सांसारिक और व्यावहारिक बातोंमें चन्द्रमाधव बाबूके समान अनाड़ी बहुत कम लोग होते हैं; पर उनके मनका झुकाव व्यापारकी तरफ था। उन्होंने कहा—हमारा पहला कर्त्तव्य भारतका दारिद्र्य-मोचन है और

इसका सबसे उत्तम और शीघ्र फलदायक उपाय बाणिज्य है । हम तीन चार आदमी व्यापार नहीं चला सकते, पर उसका सूत्रपात कर सकते हैं। दृष्टान्तके लिये मान लीजिए, हम लोग दियासलाईका कारबार चलाना चाहते हैं। अगर हम एक ऐसी लकड़ीका आविष्कार कर सकें, जो शीघ्र जल जाती है, सहजमें नहीं बुझती और देशमें सर्वत्र पाई जाती है, तो देशमें सस्ते दामोंमें दियासलाई तैयार की जा सकती है। ऐसा कहके उन्होंने विस्तारपूर्वक समझाया कि जापान और योरपमें कितनी दियासलाई तैयार होती है, उसमें किन-किन लकड़ियोंका उपयोग होता है, और क्या-क्या दाह्य पदार्थ उसमें मिलाए जाते हैं, कहाँसे कितनी दियासलाईकी रफ्तनी होती है, उसमेंसे कितनी भारतमें आती है और उसका मूल्य क्या लगता है, इत्यादि। विपिन और श्रीश निस्तब्ध बैठे रहे। पूर्णने कहा—दो-एक क़िस्मकी लकड़ियाँ लेकर मैं शीघ्र ही परीक्षा करूँगा। श्रीश मुँह फिराकर मुस्कुराने लगा।

इसी समय वहाँ अक्षय बाबू आ पहुँचे और बोले—जनाब, मैं क्या भीतर आनेका अधिकारी हूँ?

क्षीणदृष्टि चन्द्रमाधव बाबू पहचान न सके और भौंहें सिकोड़कर निस्तब्ध भावसे ताकते रहे। अक्षयने कहा—आप न घबड़ाइए और इस प्रकार भ्रुकुटी करके मुझे भी न डराइए—मैं अभूतपूर्व नहीं हूँ—बल्कि मैं आप लोगोंका ही भूतपूर्व—मेरा नाम—

चन्द्रमाधव बाबूने झटसे उठकर कहा—अब नाम बतलानेकी जरूरत नहीं है—अक्षय बाबू, आइए, पधारिए।

तीन तरुण सभ्योंने अक्षयको प्रणाम किया। विपिन और श्रीश, ये दो मित्र ताजा विवादके वैमनस्यके कारण गम्भीर होकर बैठे रहे। पूर्णने कहा—अभूतपूर्वकी अपेक्षासे भूतपूर्वको देखकर ही ज्यादा डर लगता है!

अक्षयने कहा—पूर्णबाबूने बुद्धिमानके समान ही बात कही है। संसारमें भूतका भय ही प्रचलित है। जो व्यक्ति स्वयं भूत है, अन्य व्यक्तियोंका जीवन-सम्भोग उसे कभी नहीं जँचेगा, इसी ख्यालसे मनुष्य भूतको भयङ्कर समझता है। इसलिये सभापति महाशय, आप चिर-कुमार सभाके भूतको सभासे दुतकार देंगे या पूर्व सम्पर्ककी ममताके कारण एक कुर्सी देंगे, कहिए!

"कुर्सी ही दी जायगी", कहके चन्द्र बाबूने एक कुर्सी आगे बढ़ा दी। "सर्वसम्मतिसे मैं आसन ग्रहण करता हूँ" कहके अक्षय बाबू बैठ गए। बोले—आप लोगोंने सभ्यतापूर्वक मुझे बैठनेको कहा है, पर मैं यहाँ बैठा ही रहूँगा, ऐसा असभ्य आप मुझे न समझें—खास सबब यह है कि पान, तमाखू और पत्नी आप लोगोंकी सभाके नियमोंके विरुद्ध हैं, और इन्हीं तीन बुरी लतोंसे मैं बरबाद हो रहा हूँ। इस लिये झटपट कामकी बात ख़तम करके मुझे घरको वापस चले जाना होगा।

चन्द्रबाबूने हँसकर कहा—आप जब सभ्य नहीं हैं तो आपके लिये सभाके नियम लागू नहीं होंगे। पान और तमाखूका बंदोबस्त तो शायद हो सकता है, पर आपकी तीसरी लत—

अक्षय—उसे यहाँ वहन करके लानेकी चेष्टा न कीजिएगा, मेरी वह लत प्रकाश्य नहीं है!

चन्द्रबाबू पान तमाखूके लिये सनातन नामके नौकरको पुकारनेकी तैयारी कर रहे थे, इतनेमें पूर्ण बाबू यह कहकर उठे कि मैं बुलाये देता हूँ और तब बगलवाले कमरेमें चाभी, चूड़ी और अकस्मात् पलायनका शब्द एक साथ ही सुना गया।

अक्षयने उसे रोककर कहा—"यस्मिन् देशे यदाचारः।" जब तक आपकी सभामें हूँ तबतक मैं आप लोगोंका चिरकुमार ही हूँ—कोई प्रभेद नहीं है। अब आप लोग मेरा प्रस्ताव सुनिए।

चन्द्रबाबू मेज़पर रक्खे हुए कार्य-विवरण रजिस्टरके ऊपर झुककर ध्यानपूर्वक सुनने लगे।

अक्षयने कहा—शहरके बाहर मेरे एक धनी मित्र रहते हैं। वह अपनी एक सन्तानको आप लोगोंकी कुमार सभाका सभ्य बनाना चाहते हैं।

चन्द्रबाबूने विस्मित होकर कहा—बाप अपने लड़केका ब्याह नहीं करना चाहता?

अक्षय—इस सम्बन्धमें आप निश्चिन्त रहिए—वह कभी विवाह न करेगा, मैं इस बातका जामिन हूँ। उसके दूरके सम्बन्धके एक दादा भी सभ्य होंगे। उनके सम्बन्धमें भी आप लोग निश्चिन्त रहें; कारण, यद्यपि वह आप लोगोंकी तरह सुकुमार नहीं है, पर आप लोगोंसे अधिक कुमार हैं—उनकी अवस्था ६० वर्षसे भी अधिक है, फलतः अब उनकी अवस्था सन्देहकी नहीं है; सौभाग्यसे आप लोगोंकी सबकी अवस्था अभी ऐसी है।

अक्षय बाबूके प्रस्तावसे चिरकुमार-सभा प्रफुल्ल हो उठी। सभापतिने कहा—सभ्य-पदके प्रार्थियोंका नाम-धाम—

अक्षय—इसमें सन्देह नहीं कि उनके नाम-धामका विवरण कुछ न कुछ है ही, और सभा उससे वञ्चित नहीं की जा सकेगी। सभ्यगण नाम धामके विवरणसहित ही सभामें भर्ती होंगे। पर आप लोगोंका यह एक मञ्जिलवाला गीला कमरा स्वास्थ्यके लिये अनुकूल नहीं है, इसलिये आप

लोगोंके इन बचे-खुचे चिरकुमारोंका चिरत्व कहीं लोप न हो जाय, इस सम्बन्धमें जरा सावधान रहिएगा।

चन्द्रबाबू कुछ लज्जित होकर रजिस्टरको नाकके पास ले जाकर बोले—अक्षय बाबू, आप तो जानते ही हैं कि हम लोगोंकी आमदनी——

अक्षय—आमदनीकी बात अधिक प्रकट करनेका कष्ट न कीजिए। मैं जानता हूँ कि इस सम्बन्धकी आलोचना चित्तको प्रसन्न करनेवाली न होगी। अच्छे कमरेका बन्दोबस्त कर रक्खा गया है। इसके लिये आप लोगोंके धनाध्यक्षको स्मरण करनेकी जरूरत नहीं है। चलिए न आज ही सब दिखा दिया जाय।

विपिन और श्रीशका विषादम्लान मुख उज्ज्वल हो उठा। सभापति भी प्रफुल्ल हो गये, केवल पूर्णका उत्साह भङ्ग हो चला। उसने कहा—सभाका स्थान बदलनेसे कुछ फायदा नहीं है।

अक्षयने कहा—क्यों, इस मकानसे उस मकानमें सभा ले जानेसे ही क्या आपके चिरकौमार्यका प्रदीप हवाके झोकेसे बुझ जायगा?

पूर्ण—यह कमरा तो मुझे कुछ बुरा नहीं मालूम देता।

अक्षय—बुरा नहीं है, पर इससे अच्छा कमरा शहरमें दुष्प्राप्य न होगा।

पूर्ण—मेरी रायमें तो विलासिताकी ओर ध्यान न देकर थोड़ा-बहुत कष्ट सहनेका अभ्यास भी डालना चाहिए।

श्रीशने कहा—यह अभ्यास सभाके अधिवेशनमें न करके सभाके बाहर किया जायगा।

विपिन बोला—किसी एक काममें तत्पर होनेसे ही इतना कष्ट सहनेका मौका मिलता है कि अकारण बलका क्षय करना मूर्खता है।

अक्षय—मित्रो, मेरा परामर्श सुनो। सभाके कमरेके अन्धकारसे

चिरकौमार्य व्रतका अन्धकार और न बढ़ाओ। आलोक और वायु स्त्रीलिङ्ग नहीं हैं, इसलिये सभामें उन्हें प्रवेश करनेसे न रोको। इसके अलावा विचार कर देखो कि यह स्थान गीला होनेसे सरस है, इसलिये आप लोगोंके नीरस व्रतके उपयुक्त नहीं। श्रीश बाबू, क्या राय है आपकी? विपिन बाबू आप क्या कहते हैं?

दोनों मित्रोंने कहा—ठीक बात है। आपका वह कमरा एक बार देख ही न लें।

पूर्ण दुःखित होकर चुप हो रहा। बगलवाले कमरेमें भी इस समय चाभीके बजनेका शब्द हुआ, पर अत्यन्त अप्रसन्नताके स्वरमें!

५

अक्षयने कहा—स्वामी ही स्त्रीका एक मात्र तीर्थ है। यह बात तो तुम मानती हो न?

पुरबाला—मैं क्या पण्डितजीसे शास्त्रका विधान पूछनेके लिये आई हूँ? मैं अम्माँके साथ आज काशी जा रही हूँ, यही ख़बर देनेके लिये आई हूँ।

अक्षय—पर यह कोई अच्छी ख़बर नहीं है—सुनकर तुम्हें इनाममें शाल, दुशाला देनेकी इच्छा नहीं होती है!

पुरबाला—उँह, दिल क्या फटा जाता है! क्या यह सहन नहीं होगा?

अक्षय—मैं केवल उपस्थित वियोगकी बात ही नहीं सोच रहा हूँ। तुम इस समय दो दिनके लिये यहाँ न रहीं न सही, और तो यहीं रहेंगी, किसी तरहसे इस अधमके दिन कट ही जायँगे। पर इसके बाद

क्या होगा ! देखो, धर्म-कर्ममें स्वामीसे आगे क़दम न रक्खो,—स्वर्गमें जब तुम्हें डबल प्रोमोशन मिलेगा, तब मैं पीछे रह जाऊँगा—तुम्हें विष्णुदूत रथपर चढ़ाकर ले जायगा, और मुझे यमदूत कान पकड़कर पैदल दौड़ावेगा। (गाता है)—

ले जावेंगे तुम्हें स्वर्गको दूर,
हँगड़ाना ही होगा मुझे जरूर,
इच्छा होगी विष्णुदूतके सिरको—
धरकर चोटी कर दूँ चकनाचूर !

पुरबाला—अच्छा, अच्छा, ठहरो !

अक्षय—मैं ठहर जाऊँ, केवल तुम्हीं चलोगी ! विंश शताब्दीका क्या यही नियम है ? क्या सचमुच जाओगी ?

पुरबाला—हाँ।

अक्षय—मुझे किसे सौंपे जा रही हो !

पुरबाला—रसिक दादाके हाथ।

अक्षय—तुम स्त्री हो, तुम्हें क्या मालूम कि किस ढँगसे किसके हाथोंमें किसे सौंपना होता है ! इसी लिये तो विरहावस्थामें उपयुक्त हस्त स्वयं खोजकर आत्मसमर्पण करना होता है।

पुरबाला—तुम्हें तो अधिक खोज न करनी पड़ेगी !

अक्षय—इसमें क्या शक ! गाता है—

किसे समर्पित करना होगा अपना प्राण,
इसी सोचमें समय हुआ जाता अवसान।
बाँई ओर नजर फेरो तो मन झुकता है दहिनी ओर,
दहिनी ओर अगर ताको तो रहता है बाँईका ध्यान।

ख़ैर—मेरा वक्त काटनेके लिये तो दो तीन उपाय हैं भी, पर तुम—

हाय ! करोगी प्यारी, निशि-दिन विरह-विलाप,
झुलसा देगा तुम्हें वियोगानलका ताप,
पड़े पड़े बिस्तरमें कोसोगी निज पाप,
मन्मथको कस-कसकर दोगी भीषण शाप।

पुरबाला—बहुत हुआ, माफ़ करो। यह तुकबन्दी यहीं खतम करो।

अक्षय—दुःखके समय मैं रह नहीं सकता—कविता मुँहसे धड़ाधड़ निकलती आती है। अगर तुम्हें तुकबन्दी पसन्द नहीं तो अतुकान्त मौजूद है। तुम जब परदेशमें रहोगी, तब मैं "आर्त्तनादवध-काव्य" शीर्षक एक काव्य लिखूँगा। सखी, उसका आरम्भ इस प्रकार होगा। सुनो—

सन्ध्याको चढ़कर बाष्पीय शकटमें
नारी-कुल-भूषण पुरबाला जब चलीं
काशीको, तब आर्ये अमृतोपमभाषिणी !
किस वराङ्गनाको वरकर वरमाल्यसे
सालीत्रयशाली अक्षयने किस तरह
काटे विरह-दिवस !

पुरबाला—(सगर्व) तुम्हें मेरी क़सम, हँसी नहीं करती, तुम सचमुच एक काव्य क्यों नहीं लिखते ?

अक्षय—काव्य लिखना क्या आसान काम है ? मेरी बुद्धिमें कहीं एक जगह छेद हो गया है, उसमें काव्य टिकने नहीं पाता—टपाटप नीचे गिर जाता है।

मेरे सरस विटपमें सखि, फल कैसे हाय, फले !
फूल फूटते ही मैं रख देता हूँ चरण-तले !

पर मेरे प्रश्नका तो कोई उत्तर नहीं मिला। उत्सुकतासे मरा जाता हूँ। काशी जानेके लिये तुम्हें उत्साह किस लिये हो रहा है ? विष्णु-

दूतको तो मैंने मन ही मन माफ़ कर दिया है, पर भगवान् भूतनाथ, भवानीपतिके अनुचरोंके ऊपर मुझे घोर सन्देह हो रहा है। सुना है नन्दी और भृङ्गी अनेक विषयोंमें मुझसे भी बढ़े चढ़े हैं, तब हो सकता है कि लौटनेपर शायद यह भूत तुम्हें पसन्द न हो!

अक्षयके परिहासमें अभिमानकी जो ज्वाला वर्तमान थी, उसे पुरबाला बहुत पहले समझ चुकी थी। इसके अतिरिक्त पहले काशी जानेके प्रस्तावसे उसे जो उत्साह हुआ था, वह यात्राका समय ज्यों ज्यों निकट आता था त्यों त्यों ठण्डा होता जाता था।

उसने कहा—मैं काशी नहीं जाऊँगी।

अक्षय—यह कैसी बात है! तब तो भूतभावनके जो भृत्यगण एक बार मरकर भूत हो गए हैं वे फिर द्वितीय बार मर जायँगे!

रसिकका प्रवेश।

पुरबाला—आज तो रसिक दादाका चेहरा खिला हुआ मालूम दे रहा है!

रसिक—तुम्हारे रसिक दादाके चेहरेका यह रोग किसी तरह दूर नहीं होना चाहता। विना बातके यह हर वक्त खिला ही रहता है—विवाहित स्त्री और पुरुष देखकर ईर्ष्याके कारण जल मरते हैं!

पुरबाला—सुनते हो विवाहित पुरुष महाराज! है तुम्हारे पास इस बातका कोई ठीक जवाब?

अक्षय—हम लोगोंकी प्रफुल्लताकी खबर इस वृद्धको कहाँसे लग सकती है! वह इतनी रहस्यमय है कि आज तक किसीने उसका भेद नहीं पाया। वह इतनी गोप्य है कि हम ही उसे टटोलकर नहीं पाते! कभी कभी तो सन्देह होने लगता है कि वह है भी या नहीं!

पुरबाला नाराज होकर चले जानेकी तैयारी करने लगी।

अक्षयने उसे पकड़कर और लौटाकर कहा—तुम्हें मेरी क़सम, इस आदमीके सामने न रूठो! ऐसा होनेसे इसकी गुस्ताख़ी और भी बढ़ जायगी।—देखो हे दाम्पत्यतत्त्वानभिज्ञ वृद्ध! हम लोग जिस समय रूठ जाते हैं उस समय स्वभावतः हमारा कण्टस्वर प्रबल हो उठता है, इसलिये वह तुम्हें सुनाई दे जाता है। पर जब अनुरागके समय हम लोगोंका कण्ठ रुद्ध हो जाता है, और कानके पास मुँह ले जाते हुए जब मुँह बारम्बार लक्ष्यभ्रष्ट हो जाता है, उस समयका तुम्हें कोई पता नहीं रहता!

पुरबाला—आः—क्या बकते हो! चुप रहो!

अक्षय—जब गहनोंकी फ़ेहरिस्त बनती है, तब मुनीमसे लेकर सुनार तक सभीको माॡम रहता है, पर वसन्त निशीथमें जब प्रेयसी—

पुरबाला—आः! चुप भी रहोगे या नहीं!

अक्षय—वसन्तकी रात्रिमें जब प्रेयसी—

पुरबाला—क्या बेजा बकते हो!

अक्षय—वसन्तकी रात्रिमें जब प्रेयसी गरजकर कहती है, मैं कल ही पीहर चली जाऊँगी, एक घड़ी भी यहाँ नहीं रहना चाहती, यहाँ काम करते करते मेरी हड्डियाँ चूर हुई जाती हैं—

पुरबाला—क्योंजी, कब तुम्हारी प्रेयसीने वसन्तकी रात्रिमें पीहर जानेके लिये गर्जन किया है?

अक्षय—इतिहासकी परीक्षा लोगी? केवल घटना बतला देनेसे ही छुट्टी न मिलेगी? सन् और तारीख भी क्या मुखाग्र सुनाने होंगे? मैं क्या इतना बड़ा प्रतिभाशाली हूँ!

रसिक—(पुरबालासे) तुम अब समझ गई होगी कि यह भला-मानुस तुम्हारी बात सीधी तरह नहीं कह सकता—इतनी शक्ति ही इसमें

नहीं है—इसीलिये उल्टी बात कहता है; लाड़की बातोंका भण्डार जब खतम हो जाता है तब गाली देकर लाड़ किया जाता है!

पुरबाला—अच्छा मल्लिनाथजी, अब व्याख्या करनेकी जरूरत नहीं है। अम्माँने आखिर तुम्हींको काशी ले जानेका निश्चय किया है।

रसिक—अच्छा हुआ, इसमें घबराहटकी क्या बात है! तीर्थ जानेकी तो अब अवस्था ही है। अब तुम लोगोंके लोल कटाक्ष इस वृद्धका कुछ भी नहीं कर सकते—अब तो चित्त चन्द्रचूड़के चरणोंमें—

मुग्धस्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलम्,
चेतश्चुम्बति चन्द्रचूड़चरणध्यानामृते वर्तते।

पुरबाला—यह तो बड़ी अच्छी बात है—तुम्हारे ऊपर अब अधिक कटाक्षोंका अपव्यय मैं करना भी नहीं चाहती—अब चन्द्रचूड़ चरणोंमें ही चलो—अम्माँको बुलाती हूँ।

रसिक—बड़ी दीदी, तुम्हारी अम्माँने मुझे संशोधित करनेकी बहुत चेष्टा की है; पर कुछ ऐसे कुसमयमें संस्कार-कार्य आरम्भ हुआ है कि अब उनके शासनसे कोई फल न होगा! बल्कि अब भी बिगड़नेकी अवस्था है। वह विधाताकी कृपासे बराबर ही रहती है, लोल कटाक्ष अन्तिम समय तक असर करते हैं। पर उद्धारकी अवस्था अब नहीं है। वह इस समय काशी जा रही हैं, कुछ दिन इस वृद्ध शिशुकी बुद्धि-वृत्तिकी उन्नति-साधनकी दुराशा परित्याग करके शान्तिसे रहें—क्यों नाहक उन्हें कष्ट देना चाहती हो!

जगत्तारिणीका प्रवेश।

जगत्तारिणी—बेटा, तो अब जाती हूँ।

अक्षय—क्या जा रही हो अम्माँजी? रसिक दादा अभी तक अफ़सोस जाहिर कर रहे थे कि तुम—

रसिक—(घबराकर) अक्षयबाबू सभी बातोंमें दिल्लगी करते हैं! नहीं, मुझे किसी बातका अफ़सोस नहीं है बहूजी—मैं क्यों अफ़सोस करने लगा!

अक्षय—तुम क्या नहीं कह रहे थे कि मा अकेली ही काशी जा रही हैं, मुझे नहीं लिये जातीं?

रसिक—हाँ, यह तो ठीक ही है! बुरा तो लगता ही है—फिर भी—

जगत्तारिणी—नहीं बेटा, विदेशमें तुम्हारे रसिक दादाकी देख भाल कौन करेगा? उन्हें लेकर सफर नहीं किया जा सकता!

पुरबाला—क्यों अम्माँ, रसिक दादाको अगर लिये जातीं तो वह तुम्हारी खोज-खबर लेते रहते।

जगत्तारिणी—माफ़ करो, मेरी खोज-खबर लेनेकी जरूरत नहीं है। तुम्हारे रसिक दादाकी बुद्धिका काफ़ी परिचय मिल चुका है।

रसिक—(सिरके गञ्जे स्थानपर हाथ फेरते हुए) मेरी जितनी बुद्धि है, उसका परिचय तो सदा ही दिया करता हूँ—वह तो दबाकर रक्खी ही नहीं जा सकती—वह स्वयं प्रकाशित हो जाती है। टूटा हुआ पहिया ही सबसे ज्यादा खड़खड़ाहट करता है—वह टूटा है, यह बात सारे मुहल्लेके लोग जान जाते हैं—इसीलिये बहूजी, मैं चुपचाप ही रहना चाहता हूँ, पर तुम चलाना भी कहाँ छोड़ती हो!

अपनी शिथिलताके कारण जो व्यक्ति कोई भी काम इच्छानुसार नहीं कर सकता, उसे सर्वदा भर्त्सना करनेके लिए एक हतभागा चाहिए। रसिक दादा जगत्तारिणीकी बहिस्थित आत्मग्लानिके स्वरूप हैं।

जगत्तारिणी—तो फिर मैं हारानके घर चली, सीधी उन्हीं लोगोंके साथ गाड़ीमें चढ़ जाऊँगी—इसके बाद यात्राका शुभलग्न नहीं है।

पुरी, तुम लोग तो दिन-लग्न कुछ मानती नहीं हो, ठीक समय स्टेशन पर आ जाना।

अपनी लड़की और दामादकी असामान्य आसक्तिसे मा खूब परिचित थी। पञ्चाङ्गकी खातिर अन्तिम मुहूर्त्तके पहले उनका वियोग घटानेकी चेष्टा व्यर्थ होगी, यह बात वे अच्छी तरहसे जानती थीं।

पर पुरबालाने जब कहा—अम्माँ, मैं काशी नहीं जाऊँगी, तब उन्होंने सोचा कि यह उसकी ज्यादती है। पुरबालाके ऊपर उनका बड़ा भरोसा रहता है। वह उनके साथ जायगी, यह सोचकर वह निश्चिन्त थीं। वह अपने स्वामीके साथ प्रतिवर्ष शिमले आया जाया करती है, इसलिये विदेश-भ्रमणका अनुभव उसे यथेष्ट हो चुका है। उन्होंने पुरुष अभिभावककी अपेक्षा पुरबालाका आश्रय इसी लिये लिया था कि पथसंकटमें इससे सहायता मिलेगी। अकस्मात् उसकी असम्मतिसे घबड़ाकर जगत्तारिणी अपने दामादकी ओर ताकने लगी।

अक्षयने अपनी सासका अभिप्राय समझकर कहा—यह कैसे हो सकता है? तुम न जाओगी तो अम्माँजीको तकलीफ होगी। अच्छा अम्माँजी, तुम जाओ। मैं इसे ठीक समय स्टेशनपर ले आऊँगा। जगत्तारिणीने निश्चिन्त होकर प्रस्थान किया। रसिक दादा सिरके गञ्जे स्थानपर हाथ फेरते-फेरते बिदाईके समयके शोकका भाव मुँहपर लानेकी चेष्टा करने लगे।

अक्षय—क्यों जनाब, आप कौन हैं?

महाशय, "आपकी सहधर्मिणीके साथ मेरा विशेष सबन्ध है" यह कहके पुरुष-वेशधारी शैलने अक्षयके साथ शेक-हैण्ड किया।

शैल—जिज्जाजी, मुझे नहीं पहचान सके!

पुरबाला—शैल, तूने तो हद कर दी! तुझे लाज नहीं आती?

शैल—दीदी, लज्जा तो स्त्रियोंका भूषण है—इसीलिये पुरुष-वेश रखनेपर उसे परित्याग करना पड़ता है। इसी तरह अगर जिज्जाजी औरत बनें, तो शर्मके मारे ये मुँह नहीं दिखा सकेंगे। क्यों रसिक दादा, तुम क्यों चुप हो!

रसिक—अहा शैल! जैसे किशोर कन्दर्प हो! मानो साक्षात् कुमार भवानीकी गोदसे उठ आया हो! इसे बराबर शैल समझता आया हूँ, आँखोंको अभ्यास हो गया है, इस बातका कभी ख्याल ही नहीं आया कि यह सुन्दरी है या साधारण। आज यह वेश बदला है, इसी लिये तो इसका रूप हाथ आ पाया है! पुरी, तू लाजकी बात क्या कहती है, मेरा तो जी चाहता है कि इसे खींचकर और सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दे दूँ।

पुरबाला शैलकी तरुण, सुकुमार पुरुष-मूर्ति देखकर मन-ही-मन मुग्ध हो रही थी। उसके हृदयमें यह तीक्ष्ण वेदना जागृति हो रही थी कि अहा, अगर शैल बहन न होकर मेरा भाई होती, तो कैसा अच्छा न होता! भगवान्‌ने उसका इतना रूप और इतनी बुद्धि सभी व्यर्थ कर दी है! पुरबालाकी स्निग्ध आँखें छलछला आईं।

अक्षयने स्नेहाभिषिक्त गाम्भीर्यके साथ छद्मवेशिनीको कुछ देरतक निहारकर कहा—सच कहता हूँ शैल, तुम अगर साली न होकर मेरा छोटा भाई होतीं, तो मुझे कोई एतराज नहीं था।

शैलने कुछ विचलित होकर कहा—मुझे भी नहीं था जिज्जाजी!

यदि सच पूछा जाय तो इन दोनोंका व्यवहार दो भाइयोंके समान ही था। केवल उस भ्रातृभावके साथ कौतुकमय वयस्य भाव मिश्रित होकर वह कोमल सम्बन्ध उज्ज्वल हो उठा था।

पुरबालाने शैलको छातीसे लगाकर कहा—इसी वेशमें तू कुमार-सभाका सभ्य बनने जा रही है शैल ?

शैल—अन्य वेशमें जानेसे व्याकरणका दोष होता है दीदी ! क्यों रसिक दादा, तुम्हारी क्या राय है ?

रसिक—इसमें क्या शक ! व्याकरणका ख्याल अवश्य रखना चाहिए नहीं तो फिर भगवान् पाणिनि, बोपदेव, आदिने किस लिये जन्म लिया था ? पर श्रीमती शैलबालाके उत्तर चपकन प्रत्यय लगानेसे ही क्या व्याकरणकी रक्षा होती है ?

अक्षय—नवीन मुग्धबोधमें ऐसा ही लिखा है। मैं शर्त बदकर कह सकता हूँ कि चिरकुमार-सभाके मुग्ध व्यक्तियोंको शैल जैसा प्रत्यय करावेगी वे वैसा ही प्रत्यय करेंगे ! कुमारोंकी प्रकृतिगत धातुसे मैं अच्छी तरह परिचित हूँ।

पुरबालाने एक लम्बी साँस लेकर शैलसे कहा—अपने जिजाजी और इस वृद्ध समवयसीको लेकर तू अपना खेल शुरू कर—मैं अम्माँके साथ काशी जाती हूँ।

पुरबाला इन सब नियम-विरुद्ध बातोंको मन-ही-मन अच्छा नहीं समझती थी; पर अपने पति और बहनकी विचित्र परिहासलीलामें सर्वदा बाधा डालनेको भी उसका जी नहीं चाहता था। अपने पति-सौभाग्यका खयाल करके अपनी विधवा बहनके प्रति उसकी करुणा और प्रश्रयका अन्त नहीं था। वह सोचती थी, किसी तरह हतभागिनी अपने दुखको भूली रहे तो अच्छा ! वह अपना बोरिया-बँधना ठीक करने चली गई।

इतनेमें नृपबाला तथा नीरबाला उस कमरेमें घुसते ही भागनेकी तैयारी करने लगीं। नीर दरवाजेकी ओटसे और एक बार अच्छी तरह

ताककर "मँझली दीदी" कहके दौड़ी आई। उसने कहा—दीदी, तुम्हें गले लगानेको जी करता है, पर यह चपकन अखरता है। ऐसा मालूम दे रहा है जैसे तुम किसी कहानीके राजकुँअर हो और एक विशाल मैदान पार करके हमारे उद्धारके लिये आये हो।

नीरके उच्च कण्ठस्वरसे आश्वस्त होकर नृप भी भीतर चली आई और मुग्ध होकर ताकती रही। नीरने उसे अपने पास खींचकर कहा—इस तरह लोभीके समान क्यों ताक रही है? तू जो समझ बैठी है, यह वह नहीं है, यह तेरा दुष्यन्त नहीं है—हमारी मँझली दीदी है।

रसिक—इयमधिकमनोज्ञा चपकनेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।

अक्षय—मूढ़े, तुम केवल चपकन देखकर ही मुग्ध हो गई! गिलटका इतना आदर! और इधर यह असली सोना खड़ा खड़ा हाहाकार कर रहा है!

नीर—आजकल असली सोनेकी दर बहुत बढ़ी हुई है, हमारा यह गिलट ही अच्छा है। क्या कहतीं तो मँझली दीदी!—यह कहके उसने शैलकी बनावटी मूँछोंको कुछ ऐंठ दिया।

रसिक—(अपनेको जतलाकर) यह असली सोना खूब सस्तेमें जा रहा है—किसी टकसालमें जाकर इसपर किसी महारानीकी मुहर भी अब तक नहीं लगी है!

नीर—अच्छी बात है, मैंने तुम्हें छोटी दीदीको दान कर दिया। (यह कहके रसिक दादाका हाथ पकड़कर उसने उन्हें नृपके हाथमें सौंप दिया।) तू राजी है न?

नृप—हाँ, राजी हूँ।—यह कहके रसिक दादाको एक कुर्सीपर बैठाकर वह उनके सिरके पके बाल उखाड़ने लगी।

नीर शैलकी बनावटी मूँछोंपर ताव देकर ऐंठनेकी चेष्टा करने लगी। शैलने कहा—आः क्या करती है! मूँछें गिर जायँगी!

रसिक—जरूरत क्या है, इधर आ जाओ न, ये मूँछें किसी तरह नहीं गिर सकतीं।

नीर—फिर वही बात! सँझली दीदीके हाथ तुम्हें मैंने क्यों सौंपा है? अच्छा रसिक दादा, तुम्हारे सिरके तो थोड़े बहुत बाल अभी कच्चे हैं, पर मूँछें क्यों बिलकुल पक गई हैं?

रसिक—किसी किसीका सिर पकनेके पहले मुँह पक जाता है!

नीर—दीदीकी सभा किस कमरेमें बैठेगी जिज्जाजी!

अक्षय—मेरे बैठकके कमरेमें।

नीर—अगर ऐसा है तो वह कमरा मैं सजाए देती हूँ।

अक्षय—जब तक मैंने उस कमरेका व्यवहार किया, तब तक तो एक दिनके लिये भी उसे सजानेकी इच्छा नहीं हुई!

नीर—तुम्हारे लिये झड्डू कहार है, तब भी जान पड़ता है तुम्हारी हवस पूरी नहीं हुई?

पुरबालाका प्रवेश।

पुरबाला—यहाँ तुम लोग क्या कर रही हो?

नीर—जिज्जाजीके पास पढ़नेके लिये आई हैं दीदी। पर वह कहते हैं कि यदि हम उनका बाहरका कमरा अच्छी तरहसे साफ़ करके सजा न देंगी, तो वह नहीं पढ़ावेंगे। इसलिये मँझली दीदी और मैं उनका कमरा सजानेके लिये जा रही हूँ। चलो दीदी!

नृप—तेरी इच्छा है तो तू जा—मैं नहीं जाऊँगी।

नीर—वाह, मैं अकेले काम करूँ, और तुम केवल उसका फल पाओ, ऐसा नहीं हो सकता!—यह कहके वह नृपको पकड़कर ले गई।

पुरबाला—सब ठीक कर चुकी। अब भी गाड़ी छूटनेमें शायद देर है।

अक्षय—अगर 'मिस' करना चाहती हो, तो बहुत देर है।

पुरबाला—ऐसा है तो चलो, मुझे स्टेशन पहुँचा दो। रसिक दादा, तुम यहाँ हो, इन बाल-बच्चोंकी खोज-खबर लेते रहना। (प्रणाम करती है।)

रसिक—घबराओ मत बेटी, ये लोग मुझे देखकर खूब डरते हैं, चूँ भी नहीं करने पावेंगे।

शैल—दीदी, जरा ठहर जाओ। मैं कपड़े बदलकर आती हूँ और तुम्हें प्रणाम करती हूँ।

पुरबाला—क्यों, अभी क्यों बदलती है?

शैल—नहीं दीदी, मैं इस पहनावेसे अपनेको कोई दूसरा ही आदमी समझती हूँ। तुम्हारे शरीरमें हाथ लगानेकी इच्छा नहीं होती। रसिक दादा, मेरी यह मूँछें सँभाले रहना, खोना मत!

६

शुक्लपक्षकी सन्ध्या थी। श्रीश अपने मकानके दक्षिणकी तरफके बरामदेमें एक बड़ी आराम-कुर्सीके दोनों हाथोंपर दोनों पाँव पसारकर चुपचाप सिगरेट पी रहा था। पास ही एक तिपाईपर एक रकाबीके ऊपर एक गिलासमें बरफ़संयुक्त लेमनेड और कुन्द-कुसुमकी मालाओंका ढेर रक्खा था।

विपिनने पीछेसे आकर अपने स्वाभाविक प्रबल गम्भीर कण्ठसे पुकारा—क्योंजी संन्यासी महात्मा!

श्रीश झटसे पाँव समेटकर बैठ गया और ठठाकर हँसता हुआ बोला—जान पड़ता है अभीतक उस झगड़ेको नहीं भूले हो।

श्रीश कुछ समय पहले स्वयं विपिनके यहाँ जानेकी बात सोच रहा था। पर शरत्-सन्ध्याकी निर्मल ज्योत्स्नाके द्वारा मोहित होकर अपनी जगहसे हिल नहीं सकता था। एक गिलासमें बरफ-संयुक्त लेमनेड और कुन्दफूल मँगाकर ज्योत्स्नाशुभ्र आकाशमें सिगरेटके धूम्रद्वारा विचित्र कल्पना-कुण्डली निर्माण कर रहा था।

श्रीश—अच्छा भाई, शिशु-पालक, तुम क्या सचमुच यह समझते हो कि मैं संन्यासी नहीं हो सकता?

विपिन—हो क्यों नहीं सकोगे! पर साथमें बहुतसे बोझा ढोनेवाले चेले रहने चाहिए।

श्रीश—तुम्हारा मतलब यही न है कि कोई मेरे लिये बेलेकी माला गूँथ देगा और कोई बाजारसे बरफ और लेमनेडकी भीख माँग लावेगा? इसमें हर्ज ही कौन-सा है? जिस संन्यास-धर्मसे बेलेके प्रति वैराग्य और शीतल लेमनेडके प्रति वितृष्णा उत्पन्न हो, क्या वह बहुत ऊँचे दर्जेका संन्यास है?

विपिन—साधारण भाषामें संन्यास-धर्मसे तो इसी प्रकारका बोध होता है।

श्रीश—यह खूब सुनाई! तुम क्या यह समझते हो कि किसी शब्दका एकसे दूसरा अर्थ नहीं होता? एक आदमी संन्यासी शब्दका जो अर्थ समझता है, दूसरा आदमी भी अगर उसका वही अर्थ मान ले, तो फिर मन नामक एक स्वाधीन पदार्थ है किसलिये?

विपिन—तुम्हारे मन महाशय संन्यासी शब्दका क्या अर्थ समझे हैं, मेरे मन महाशय उसे सुननेके लिये उत्सुक हैं!

श्रीश—मेरी सम्मतिमें संन्यासीका वेश इस प्रकार है—गलेमें फूलोंकी माला, शरीरमें चन्दन, कानोंमें कुण्डल और मुँहमें हँसी । मेरी सम्मतिमें संन्यासीका काम है मनुष्यका चित्त आकर्षित करना । सुन्दर मुखाकृति, मीठा गला, और वक्तृतापर अधिकार, यदि ये सब बातें न हों, तो सन्यासी बनना व्यर्थ है । रुचि, बुद्धि, कार्य-शक्ति और प्रफुल्लता, इन सभी बातोंमें संन्यासी-सम्प्रदायको गृहस्थके लिये आदर्श-स्वरूप होना चाहिए ।

विपिन—अर्थात् कार्त्तिकोंके एक दलको मोरोंके ऊपर चढ़कर रास्तेमें निकलना चाहिए ।

श्रीश—मोर न मिलें, तो ट्राम है, पैदल चलनेमें भी आपत्ति नहीं है । कुमार-सभाके माने ही कार्त्तिक-सभा है । कार्त्तिक क्या केवल सुपुरुष ही थे ? स्वर्गके सेनापति भी तो वे थे ।

विपिन—लड़नेके लिये उनके केवल दो ही हाथ थे, पर व्याख्यान देनेके लिये तीन जोड़े मुँह थे ।

श्रीश—इससे प्रमाणित होता है कि हमारे पितामहगण बाहुबलसे वाक्य-बलको तीन गुना अधिक महत्त्वपूर्ण समझते थे । मैं भी पट्ठेबाजी (पहलवानी) को वीरत्वका आदर्श नहीं मानता ।

विपिन—शायद यह बात मुझे लक्ष्य करके कही गई है ?

श्रीश—यह देखो ! मनुष्यको अहङ्कार कितना मटियामेट कर देता है । तुम यह निश्चित समझे हो कि पट्ठेबाज तुम्हीं हो ! तुम्हीं कलियुगके भीमसेन हो ! अच्छा, आओ, युद्धं देहि ! एक बार तुम्हारे वीरत्वकी परीक्षा ही हो जाय !

ऐसा कहके दोनों मित्र हँसीमें हाथापाई करने लगे । विपिनने अकस्मात् "भीमका पतन हुआ" कहके श्रीशकी आराम कुर्सीपर अधि-

कार कर लिया और उसपर दोनों पाँव फैलाकर "बड़ी प्यास लगी है" कहके लेमनेडका गिलास एक साँसमें खतम कर डाला। उसी समय श्रीशने लपककर फूलोंकी माला हाथमें ले ली और "किन्तु विजय-माला मेरी है" कहके उसे पहन लिया तथा बेतके मोढ़ेपर बैठकर कहा—अच्छा भाई, सच बतलाओ, अगर शिक्षित लोगोंका एक दल इसी प्रकार संसार परित्याग करके, सुन्दर वेशसे सज्जित होकर, प्रफुल्ल प्रसन्न मुखसे गीतों और व्याख्यानोंके द्वारा भारतवर्षमें चारों ओर शिक्षाका प्रचार करता हुआ घूमे तो इससे उपकार होगा या नहीं?

विपिनने इस तर्कको लेकर मित्रके साथ झगड़ा करना उचित नहीं समझा। उसने कहा—आइडिया तो अच्छी है।

श्रीश—अर्थात् सुननेमें सुन्दर है, पर कार्य-रूपमें असाध्य है! मैं कहता हूँ यह असाध्य नहीं है, और मैं दृष्टान्तद्वारा इस बातको प्रमाणित करूँगा। भारतवर्षमें संन्यास-धर्म एक प्रचण्ड शक्ति है, उसकी राख झाड़कर, झोली छीनकर, जटा मूँड़कर उसे सौन्दर्य और कर्मनिष्ठामें प्रतिष्ठित करना ही चिरकुमार-सभाका उद्देश्य है। लड़कोंको पढ़ाने या दियासलाईका कारबार करनेके लिये हम लोगोंने जीवनव्यापी व्रत ग्रहण नहीं किया है। अब बतलाओ, तुम मेरे प्रस्तावसे सहमत हो या नहीं?

विपिन—तुम्हारे संन्यासीके लिये जिस प्रकारके रूप, कण्ठ और साज-सरञ्जामकी आवश्यकता है, मेरे पास तो उनमेंसे एक भी नहीं है। हाँ, मजूर बनकर पीछे पीछे चलनेके लिये राजी हूँ! तुम कानोंमें सोनेके कुण्डल या कम-से-कम आँखोंमें सोनेका चश्मा पहनकर जहाँ-तहाँ घूमते फिरोगे, तो इसके लिये एक पहरेदारकी जरूरत रहेगी ही, सो यह काम मेरे द्वारा बहुत कुछ चल जायगा।

श्रीश—फिर मजाक!

विपिन—नहीं भाई, मजाक नहीं करता। मैं सच कहता हूँ कि अगर तुम अपने प्रस्तावको कार्य-रूपमें परिणत कर सको, तो बहुत अच्छा हो। पर इस प्रकारके एक सम्प्रदायमें सभीके काम समान नहीं हो सकते, जिसकी जैसी स्वाभाविक क्षमता होगी, उसीके अनुसार वह योग दे सकेगा।

श्रीश—यह बात तो ठीक है। केवल एक विषयमें हम लोगोंको दृढ़ होना पड़ेगा—स्त्री-जातिसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखना होगा।

विपिन—माला, चन्दन और अङ्गद-कुण्डल, ये सभी रखना चाहते हो, केवल इसी एक विषयमें इतनी अधिक दृढ़ता क्यों?

श्रीश—इन चीजोंको रखता हूँ, इसी लिये यह दृढ़ता है। चैतन्यने इसी लिये अपने अनुचरोंको स्त्रियोंके संगसे कठिन शासनमें रक्खा था। उनका धर्म अनुराग और सौन्दर्यका धर्म था, इसी कारण उनके लिये प्रलोभनके फन्दे बहुत थे।

विपिन—अगर ऐसा है तो डर की बात है!

श्रीश—स्वयं मेरे लिये लेशमात्र नहीं। मैं अपने मनको पृथ्वीके विचित्र सौन्दर्यके बीचमें छोड़ देता हूँ, किसीकी मजाल नहीं कि मुझे किसी फन्देमें फँसा ले! पर तुम लोग जो फुटबॉल, टेनिस, क्रिकेट लेकर दिन-रात व्यस्त रहते हो—तुम लोग यदि एक बार गिर पड़ोगे, तो बैट-बॉल और गुल्ली-डण्डेके साथ ही चकनाचूर हो जाओगे।

विपिन—अच्छी बात है, समय आनेपर देखा जायगा।

श्रीश—यह बात ठीक नहीं। समय उपस्थित नहीं होगा—हम होने नहीं देंगे। समय कुछ रथपर चढ़कर तो आता नहीं—हम ही उसे कन्धेपर रखकर ले आते हैं। पर तुम जिस समयकी बात कह रहे हो, उसे वाहनके अभावसे लौट जाना ही होगा।

पूर्ण बाबूका प्रवेश।

दोनों—आइए पूर्ण बाबू!

विपिन उसके लिये आराम-कुर्सी छोड़कर स्वयं एक दूसरी कुर्सी खींचकर बैठ गया। पूर्णके साथ श्रीश और विपिनकी उतनी घनिष्ठता नहीं थी, इसलिये उसके प्रति वे दोनों विशेष सत्कार किया करते थे।

पूर्ण—इस बरामदेमें तुमने यह चाँदनीकी रचना बुरी नहीं की है—बीच-बीचमें खम्भोंकी छाया डाल डालकर सजाया खूब है!

श्रीश—छतके ऊपर चाँदनीकी रचना, आदि अनेकानेक अत्याश्चर्यजनक क्षमताएँ मुझमें जन्मके पहलेसे ही वर्तमान हैं। पर देखिए पूर्ण बाबू, वह दियासलाई वगैरहका काम मुझे अच्छा नहीं आता।

पूर्ण—(फूलोंकी मालाकी ओर देखकर) संन्यासधर्ममें भी क्या तुम्हारा असामान्य अधिकार है?

श्रीश—यही बात तो चल रही थी। भला संन्यास-धर्म तुम किसे कहते हो?

पूर्ण—उस धर्ममें दर्जी, धोबी और नाईसे किसी प्रकार सहायता नहीं ली जाती; जुलाहेकी तो बिलकुल ही अवज्ञा करनी होती है, पियर्ससोपके विज्ञापनकी ओर भी नजर नहीं दौड़ानी पड़ती—

श्रीश—अरे राम! वह संन्यास-धर्म तो बूढ़ा होकर कभीका मर-खप गया है—अब तो नवीन संन्यासी नामक एक नया सम्प्रदाय संगठित करना होगा।

पूर्ण—विद्यासुन्दर नाटकमें जो नवीन संन्यासी है, वह बुरा दृष्टान्त नहीं है—पर वह तो कुमार-सभाके विधानके अनुसार नहीं चला।

श्रीश—अगर चलता तो वही ठीक दृष्टान्त होता। साज सजा, वाक्य और आचरणमें सुन्दर और सुनिपुण होना चाहिए—

पूर्ण—केवल राजकन्याकी ओरसे दृष्टि हटा लेनी चाहिए यही न ? बिना सूतकी माला गूँथनी होगी, पर वह माला पहनाई जायगी किसके गलेमें ?

श्रीश—स्वदेशके ! बात जरा बड़ी हो गई है, पर किया क्या जाय ! मोलिनी मौसी और राजकुमारी बिलकुल निषिद्ध हैं, पर यह बात दिल्लगी नहीं है, पूर्ण बाबू—

पूर्ण—यह बात दिल्लगी जैसी तो बिलकुल मालूम नहीं पड़ती—भयङ्कर कड़ी बात है ! बिलकुल सूखी और नीरस !

श्रीश—हमारी चिरकुमार-सभामेंसे एक ऐसा संन्यासी-सम्प्रदाय संगठित करना होगा, जो रुचि, शिक्षा और कर्ममें सभी गृहस्थ लोगोंके लिये आदर्श-स्वरूप होगा। वे लोग सङ्गीतादि कलाओंमें अद्वितीय होंगे, साथ ही लाठी-तलवार चलाने, घोड़ेपर चढ़ने, और बन्दूकका निशाना लगानेमें पारदर्शी होंगे—

पूर्ण—अर्थात् मनोहरण और प्राणहरण, दोनों कर्मोंमें ही मजबूत होंगे ! पुरुष देवी[3] चौधरानीका दल समझिए !

श्रीश—बङ्किम बाबूने मेरी 'आइडिया' पहलेसे ही चुरा रक्खी है—पर उसे काममें लगाकर अपनी कर लेनी चाहिए।

पूर्ण—सभापति महाशयकी क्या राय है ?

श्रीश—उन्हें लगातार कई दिनों तक समझा बुझाकर मैं अपने दलमें खींच लाया हूँ। पर उन्होंने अपनी दियासलाईकी बात अभी नहीं छोड़ी है। वह कहते हैं संन्यासी कृषितत्त्व, आदि सीखकर गाँव-गाँवमें किसानोंको शिक्षा देते हुए घूमेंगे, एक एक रुपएके शेयरोंका एक

१–२ विद्यासुन्दर नामक एक प्रसिद्ध बँगला काव्यके दो पात्र। ३ बँकिम बाबूके प्रसिद्ध उपन्यासकी नायिका।

बैङ्क खोलकर बड़े बड़े ग्रामोंमें नये ढँगकी एक-एक दूकान खोल देंगे—भारतवर्षमें चारों ओर व्यापारका जाल विस्तारित कर देंगे।

पूर्ण—विपिन बाबूकी क्या राय है?

विपिनकी रायमें यह कल्पना व्यावहारिक नहीं थी, पर श्रीशकी सभी खामख्यालियोंको वह स्नेहकी दृष्टिसे देखता था;—प्रतिवाद करके श्रीशके उत्साहमें विघ्न डालनेको उसका जी नहीं चाहता था। उसने कहा—यद्यपि मैं अपनेको श्रीशके नवीन संन्यासी-सम्प्रदायका आदर्श पुरुष नहीं समझता, पर अगर दल गठित हो जाय, तो मैं भी संन्यासी बननेके लिये तैयार हूँ।

पूर्ण—पर संन्यासी बननेमें टके चाहिए, जनाब। केवल कौपीनसे काम नहीं चलेगा—अङ्गद, कुण्डल, आभरण, कुन्तलीन, ओटो—

श्रीश—पूर्ण बाबू, दिल्लगी करो, या कुछ भी करो, चिरकुमार-सभा संन्यासी-सभा अवश्य होगी। हम एक तरफ़ कठोर आत्मत्याग करेंगे और दूसरी तरफ़ मनुष्यत्वके किसी भी उपकरणसे अपनेको वञ्चित न रक्खेंगे। हम कठिन शौर्य और ललित सौन्दर्य, दोनोंको समान आदरसे ग्रहण करेंगे। और इसी दुरूह साधनासे भारतवर्षमें नए युगका आविर्भाव होगा—

पूर्ण—समझ गया हूँ श्रीश बाबू—पर नारी क्या मनुष्यत्वके एक सर्वप्रधान उपकरणमें नहीं गिनी जाती और उसकी उपेक्षा करनेसे क्या ललित सौन्दर्यके प्रति यथेष्ट आदरका भाव प्रकट किया जा सकेगा?

श्रीश—नारीका एक दोष यह है कि वह पुरुषजातिको लताके समान लपेट लेती है। यदि उसके द्वारा जड़ित होनेकी आशङ्का न होती, यदि उसकी रक्षा करके भी स्वाधीनताकी रक्षा की जा सकती, तब तो कोई बात नहीं थी। जब काममें जीवन ही उत्सर्ग करना है,

तो कामकी सभी बाधाओंको दूर करना चाहिए। पाणिग्रहण कर डालनेसे अपने पाणिका भी बद्ध कर डालना होगा; सो इस तरह काम नहीं चलनेका!

पूर्ण—घबराओ मत भाई, मैं तुम्हें अपने शुभ विवाहका निमन्त्रण देनेके लिए नहीं आया हूँ। पर जरा सोचनेकी बात है कि मनुष्य-जन्म अब आगे प्राप्त होगा या नहीं, इसमें सन्देह है; इस पर भी हृदयको जीवन-भर जिस पिपासाके जलसे वञ्चित करने जा रहे हैं, उसकी पूर्त्तिके स्वरूप क्या कहीं कुछ प्राप्त होगा? मुसलमानोंके स्वर्गमें हूरें हैं, हिन्दुओंके स्वर्गमें भी अप्सराओंका अभाव नहीं है, चिरकुमार सभाके स्वर्गमें सभापति और सभ्य महाशयोंकी अपेक्षा अधिक मनोरम और कुछ पाया जायगा क्या?

श्रीश—पूर्ण बाबू, तुम कहते क्या हो? तुम तो—

पूर्ण—घबरानेकी बात नहीं है, अभी मर नहीं मिटा हूँ। तुम्हारी यह छतभरी चाँदनी और यह फूलोंकी सुगन्ध क्या कौमार्यव्रतरक्षाके कार्योंमें सहायता पहुँचानेके लिये उत्पन्न हुई हैं? कभी कभी मनके भीतर एक प्रकारका बाष्प जमा हो जाता है, उसे मैं उच्छ्वसित कर देना उचित समझता हूँ। उसे दबाकर अपनेको भुलाये रखनेसे किसी दिन चिरकुमार-सभाका 'बॉयलर' ही फट पड़ेगा। कुछ भी हो, संन्यासी होनेका ही अगर तुम निश्चय करते हो, तो मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा—पर सभाकी रक्षा तो करनी होगी!

श्रीश—क्यों? क्या हुआ?

पूर्ण—अक्षय बाबू हमारी सभाका स्थान बदलनेका प्रबन्ध कर रहे हैं, यह मैं ठीक नहीं समझता।

श्रीश—सन्देह नास्तिकताकी छाया है। ठीक नहीं होगा, नाश हो जायगा, बिगड़ जायगा, ये सब बातें मैं कभी मनमें नहीं लाता। अच्छा ही होगा, जो कुछ हो रहा है ठीक हो रहा है, चिरकुमार-सभाका उदार, विस्तीर्ण भविष्य मैं अपनी आँखोंके सामने देख रहा हूँ—अक्षय बाबू सभाको एक मकानसे दूसरे मकानमें ले जाकर क्या खराबी कर सकते हैं? केवल गलीके एक नम्बरसे दूसरे नम्बरमें ही नहीं, हमें तो रास्ते रास्ते और देश देशमें भ्रमण करना होगा! सन्देह, शङ्का, उद्वेग ये सब बातें मनसे हटा दो, पूर्णबाबू! विश्वास और आनन्द न होनेसे, कोई बड़ा काम नहीं हो सकता!

पूर्ण निरुत्तर होकर बैठा रहा। विपिनने कहा—कुछ दिन देख ही न लो! अगर किसी प्रकारकी असुविधा होगी तो अपने पूर्व स्थानमें फिर लौट आयँगे। हम लोगोंका वह अन्धकार विवर कोई छीन तो लेगा नहीं!

हाय, पूर्णकी हृदय-वेदना कौन समझेगा!

अकस्मात् चन्द्रमाधव बाबू बड़ी तेजीके साथ आ खड़े होते हैं और तीनों व्यक्ति आदरपूर्वक अदबके साथ खड़े हो जाते हैं।

चन्द्र—देखो, मैं उसी बातको सोच रहा था—

श्रीश—बैठिए!

चन्द्र—ना, ना, बैठूँगा नहीं—मैं अभी जा रहा हूँ। मैं कहता था कि संन्यासव्रतके लिए हमें अभीसे प्रस्तुत होना होगा। अकस्मात् कोई दुर्घटना हो जानेसे या किसीको बुखार आदि आ जानेसे कैसी चिकित्सा करनी होगी, यह हमें सीखना होगा। इस सम्बन्धमें डाक्टर रामरतनबाबू प्रत्येक रविवारको हमारी सभामें दो घण्टे व्याख्यान दिया करेंगे, इसका प्रबन्ध कर आया हूँ।

श्रीश—पर क्या इससे बहुत विलम्ब न होगा ?

चन्द्र—विलम्ब तो होगा ही, काम कुछ आसान नहीं है। केवल यही नहीं, हमें थोड़ासा क़ानून भी सीखना होगा। अविचार, अत्याचारसे रक्षा करना और किसका कितना अधिकार है, यह किसानोंको समझा देना हमारा काम है।

श्रीश—चन्द्र बाबू, बैठिए।

चन्द्र—नहीं श्रीश बाबू, बैठनेका समय नहीं है, मुझे एक काम है। एक बात और है—बैलगाड़ी, धान कूटनेकी ढेंकी, करघा, आदि देशकी आवश्यक चीजोंको इस तरहसे संशोधित करना होगा कि वे सस्ती मजबूत और अधिक उपयोगी हो सकें। अबकी गर्मीकी छुट्टियोंमें केदार बाबूके कारखानेमें जाकर हमें इस सम्बन्धमें कितनी ही परीक्षाएँ करनी चाहिए।

श्रीश—चन्द्र बाबू, आप बहुत देरसे खड़े हैं—(कुर्सी आगेको बढ़ाता है।)

चन्द्र—ना, ना, मैं अभी जाता हूँ। देखो, मेरी यह राय है कि अगर हम देहातमें काममें लाई जानेवाली इन सब चीजोंकी उन्नति कर सकें, तो उससे किसानोंके मनमें जिस प्रकारका आन्दोलन होगा, वैसा बड़े बड़े संस्कार-कार्योंसे भी न हो सकेगा। उन लोगोंके चिर-व्यवहार्य ढेंकी, कोल्हू, घानी आदिमें कुछ परिवर्तन करनेसे उनका समस्त मन जागरित हो उठेगा। वे समझ सकेंगे कि पृथ्वी एक ही स्थानपर नहीं ठहरी है।

श्रीश—चन्द्र बाबू, तशरीफ़ न रक्खेंगे ?

चन्द्र—नहीं, रहने दो। ज़रा सोचनेकी बात है कि हम लोग इतने समयसे शिक्षा पाते आ रहे हैं, उचित यह था कि ढेंकी, कोल्हू आदिसे

उसका परिचय आरम्भ होता। बड़े बड़े कारखानोंकी बात तो दूर रही, घरके भीतर ही हमारी सजाग दृष्टि नहीं पड़ी। हमारे सामने जो कुछ पड़ा है, उसकी ओर न तो हम लोगोंने अच्छी तरहसे ताका, न उसके सम्बन्धमें कुछ चिन्ता की। जो जैसा था वह वैसा ही रह गया है। मनुष्य अग्रसर हो रहा है, पर उसकी चीजें पीछे पड़ी रह जा रही हैं, यह कभी नहीं हो सकता। हम पड़े हुए हैं और अँगरेज हमें अपने कन्धेपर वहन किए ले जा रहा है, इसे आगे बढ़ना नहीं कह सकते। हमारी सामान्य ग्राम्य जीवन-यात्राकी बैलगाड़ी देहातके पङ्किल पथमें फँसकर अचल हो रही है, संन्यासी-संप्रदायको उसके पहियोंको ढकेलना चाहिए—मशीनकी गाड़ीके ड्राइवर बननेकी दुराशा अभी स्थगित रहनी चाहिए। क्या बजा श्रीश बाबू?

श्रीश—साढ़े आठ बज गए हैं।

चन्द्र—तब तो मैं जाता हूँ। तो यह बात ठहरी कि हम लोगोंको अब अन्य समस्त आलोचनाओंको छोड़कर नियमित रूपसे शिक्षा-कार्यमें लग जाना चाहिए और—

पूर्ण—आप अगर थोड़ी देर तशरीफ रक्खें, तो मैं आपसे एक दो बातें अर्ज करूँ—

चन्द्र—नहीं आज और समय नहीं है—

पूर्ण—ज्यादा कुछ नहीं है, मैं कहता था कि हमारी सभा—

चन्द्र—उसे कलके लिए रखिए पूर्ण बाबू—

पूर्ण—पर कल ही तो सभा बैठेगी—

चन्द्र—अच्छा, अगर ऐसा है तो परसों सही-

पूर्ण—देखिए, अक्षय बाबूने जो—

चन्द्र—पूर्ण बाबू, मुझे माफ़ कीजिए, आज देर हो गई है, पर देखो, एक बात मुझे और कहनी है। चिरकुमार-सभा अगर धीरे-धीरे विस्तीर्ण हो गई, तो हमारे सभी सभ्य कुछ संन्यासी बनकर न निकल सकेंगे, इसलिये उसके दो विभाग करना आवश्यक होगा—

पूर्ण—स्थावर और जङ्गम।

चन्द्र—नाम आप चाहे जो रख लीजिए। इसके सिवा अक्षय बाबूने उस दिन जो बात कही थी वह भी मुझे बुरी नहीं मालूम दी। वह कहते हैं, चिरकुमार सभाके साथ एक और सभा स्थापित होनी चाहिए जिसमें विवाहित और विवाह-सङ्कल्पित लोग लिए जा सकें। गृहस्थ लोगोंका भी तो देशके प्रति कर्त्तव्य है। सभीको अपनी अपनी योग्यतानुसार किसी-न-किसी उपयोगी कार्यमें लग जाना चाहिए—साधारण व्रत यही है। हम लोगोंका एक दल कुमारव्रत ग्रहण करके देश-देशमें भ्रमण करेगा, एकदल कुमारव्रत ग्रहण करके एक ही स्थानमें स्थायी रूपसे बैठा रहकर काम करेगा और एक दल गृहस्थावस्थामें अपनी अपनी रुचि और योग्यताके अनुसार किसी एक प्रयोजनीय कार्यका अवलम्बन करके देशके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करेगा। जो भ्रमणशील परिव्राजक-सम्प्रदायके अन्तर्गत होंगे, उन्हें नकशे बनाना, जमीनका माप करना, उद्भिद् विद्या, भूतत्त्व विद्या, प्राणितत्त्व विद्या आदि नाना विद्याएँ सीखनी होंगी,—वे जिस जिस देशमें जायँगे वहाँके समस्त तथ्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपसे संगृहीत करेंगे,—इसी उपायसे भारतीयोंके द्वारा भारतका यथार्थ विवरण लिपिबद्ध होनेकी भित्ति स्थापित होगी—हण्टर साहबके ऊपर निर्भर रहनेसे काम नहीं चलेगा—

पूर्ण—चन्द्र बाबू, अगर आप ज़रा देरके लिये तशरीफ़ रक्खें तो एक बात—

चन्द्र—नहीं—मैं कहता था कि जहाँ-जहाँ हम लोग जायँगे वहाँकी ऐतिहासिक जनश्रुतियों और प्राचीन पोथियोंका संग्रह करना हमारा कर्त्तव्य होगा—शिलालिपि, ताम्रशासन, ये चीजें भी इकट्ठी करनी होंगी, इसलिये हमें प्राचीन लिपियोंके पढ़नेका भी अभ्यास करना होगा।

पूर्ण—यह सब तो पीछेकी बातें हैं, पर—

चन्द्र—नहीं, नहीं, मेरा कहनेका मतलब यह नहीं है कि सभीको सब विद्याएँ सीखनी होंगी, ऐसा होनेसे तो अन्त ही नहीं पाया जायगा। अभिरुचिके अनुसार उनमेंसे कोई एक, कोई दो-तीन सीख लेगा—

श्रीश—पर यह होनेपर भी—

चन्द्र—मान लो पाँच साल। पाँच सालमें हम लोग प्रस्तुत होकर बाहर निकल सकेंगे। जो लोग जीवन-भरका व्रत ग्रहण करेंगे, उनके लिये पाँच साल कुछ भी नहीं हैं। इसके सिवा इन पाँच सालोंमें ही हम लोगोंकी परीक्षा हो जायगी—जो इस परीक्षामें टिके रहेंगे, उनके सम्बन्धमें फिर किसीको कोई सन्देह नहीं रहेगा।

पूर्ण—पर देखिए, हमारी सभाका जो स्थानान्तर किया जा रहा है,—

चन्द्र—नहीं पूर्ण बाबू, आज और नहीं ठहर सकता, मेरा बड़ा जरूरी काम पड़ा है। पूर्ण बाबू, मेरी बातोंपर अच्छी तरहसे विचार करके देखिए। यह धारणा हो सकती है कि ये बातें असाध्य हैं—पर यह बात नहीं है। इसमें सन्देह नहीं, यह कठिन-साध्य है—पर श्रेष्ठ कार्य दुस्साध्य होता ही है। हमें अगर पाँच दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति मिल जायँ, तो हम जो काम करेंगे, वह सदाके लिये भारतको आच्छन्न कर देगा।

श्रीश—पर आप कहते थे कि बैलगाड़ीके पहिए आदि छोटी छोटी चीजें—

चन्द्र—ठीक बात है। मैं छोटा समझकर उनकी भी उपेक्षा नहीं करता—और बड़े कामको भी असाध्य समझकर उससे नहीं डरता—

पूर्ण—पर सभाके अधिवेशनके सम्बन्धमें भी—

चन्द्र—यह सब बातें कल होगीं पूर्ण बाबू! मैं जाता हूँ।

[चन्द्र बाबूका शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान।]

विपिन—क्यों भाई श्रीश, तुम चुप क्यों हो? एक शराबीका पागलपन देखकर दूसरे शराबीका नशा उतर जाता है। चन्द्र बाबूके उत्साहने तुम्हें बिल्कुल ढीला कर दिया है।

श्रीश—नहीं जी, बहुत सोचनेकी बातें हैं। उत्साह क्या हमेशा केवल बकनेसे ही प्रकट होता है? वह कभी कभी बिल्कुल स्तब्ध हो रहता है और वही अवस्था सांघातिक है।

विपिन—पूर्ण बाबू, तुम तो एकाएक भागने लगे!

पूर्ण—सभापति महाशयको रास्तेमें पकड़ने जा रहा हूँ—रास्तेमें चलते चलते शायद मेरी दो-एक बातें सुन लें—

विपिन—ठीक इससे उलटा होगा। उनकी जो बातें बाक़ी रह गई होंगी, उन्हें सुनाते सुनाते वह यह भी भूल जायँगे कि उन्हें कहाँ जाना है।

वनमालीका प्रवेश।

वन०—अच्छे तो हैं श्रीश बाबू? विपिन बाबू आपकी तबीयत तो अच्छी है? पूर्ण बाबू भी यहीं दिखलाई देते हैं! अच्छा ही हुआ। मैं बहुत कह-सुनकर कुम्हारटोलेकी उन दो कन्याओंको ठहरा आया हूँ।

श्रीश—पर हमें आप नहीं ठहरा सकेंगे । हम कुछ बेढब बात कर बैठेंगे ।

पूर्ण—श्रीश बाबू, आप लोग बैठें । मुझे एक जरूरी काम है ।

विपिन—पूर्ण बाबू, इससे तो यह अच्छा रहेगा कि आप बैठें । आपका काम हम दो आदमी मिलकर किये आते हैं ।

पूर्ण—क्या इससे यह अच्छा न रहेगा कि तीनों मिलकर पूरा करें ?

वन०—आप लोगोंको इस समय जल्दी हो रही है । ख़ैर, फिर किसी दिन आऊँगा ।

७

चन्द्रमाधव बाबूने जब पुकारा—" निर्मल " तब उन्हें यह उत्तर अवश्य मिला कि " क्या है मामा, " पर सुर ठीक नहीं मालूम हुआ । चन्द्रबाबूको छोड़कर यदि और कोई दूसरा आदमी होता तो वह समझ जाता कि यहाँ दालमें अवश्य कुछ काला है ।

" निर्मल, मेरे गलेका बटन कहाँ है ? मुझे नहीं मिलता ! "

" वहीं कहीं होगा । "

इस प्रकारके अनावश्यक और अनिर्दिष्ट संवादसे किसीका कुछ उपकार नहीं हो सकता, विशेषतः जिसकी दृष्टि-शक्ति क्षीण हो । फलतः इस संवादसे अदृश्य बटनके सम्बन्धमें कोई नूतन ज्ञान प्राप्त न होनेपर भी निर्मलाकी मानसिक स्थितिके सम्बन्धमें बहुत कुछ प्रकाश पड़ा । पर अध्यापक चन्द्रमाधवकी दृष्टि इस तरफ़ भी तीक्ष्ण नहीं है । उन्होंने और दिनोंकी तरह ही निश्चिन्त निर्भरताका भाव प्रकट करके कहा—ज़रा ढूँढ़ तो दो बेटी !

निर्मलाने कहा—तुम न जाने कहाँ क्या डाल आते हो! मैं कहाँसे ढूँढ दूँ!

इतनी देरके बाद चन्द्रबाबूके स्वभावनिःशङ्क मनमें कुछ सन्देहका सञ्चार हुआ। उन्होंने स्निग्ध कण्ठसे कहा—तुम्हीं तो खोज सकती हो निर्मल! मेरी सभी भूलोंके सम्बन्धमें इतना धीरज और किसे रहता है?

निर्मलाका रुद्ध अभिमान चन्द्र बाबूके स्नेहस्वरसे अकस्मात् अश्रुजलमें विगलित होनेको तैयार हुआ। वह चुपचाप रोकनेकी चेष्टा करने लगी।

उसे निरुत्तर देखकर चन्द्रबाबू उसके पास आए, और जिस प्रकार सोनेकी सन्दिग्ध मुहर आँखोंके खूब पास लाकर देखी जाती है, उसी प्रकार उन्होंने निर्मलाका मुँह दो उँगलियोंसे ऊपर उठाकर कुछ देर तक देखा और गम्भीरताके साथ मुस्कुराकर कहा—निर्मल आकाशमें कुछ मलिनता सी दिखलाई देती है! क्या हुआ है बतला तो भला!

निर्मला जानती थी कि चन्द्रमाधव बाबू अनुमान करनेकी चेष्टा नहीं करेंगे। जो बात स्पष्ट रूपसे प्रकाशित नहीं होती है, उसे वह मनमें स्थान भी नहीं देते हैं। उनका अपना चित्त जिस प्रकार अन्त तक स्वच्छ है, दूसरेसे भी वह उसी प्रकार स्वच्छताकी आशा करते हैं।

निर्मलाने व्यथित स्वरमें कहा—इतने दिनोंके बाद आज मुझे अपनी चिरकुमार-सभासे अलग क्यों कर रहे हो? मैंने क्या बिगाड़ा है?

चन्द्रमाधव बाबूने आश्चर्यान्वित होकर कहा—चिरकुमार-सभासे तुम्हें अलग करना कैसा? उस सभासे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है?

निर्मला—दरवाजेकी ओट रहनेसे क्या सम्बन्ध नहीं होता? कमसे कम जितना सम्बन्ध है उतना क्यों नहीं रहने दिया जाता?

चन्द्रबाबू—निर्मल, तुम्हें तो इस सभाका काम करना नहीं है; जो काम करेंगे उन्हींके सुभीतेका ख्याल करके—

निर्मला—मैं क्यों काम नहीं करूँगी? तुम्हारा भाञ्जा न होकर भाञ्जी होकर पैदा हुई हूँ, इसीलिये क्या तुम लोगोंकी भलाईके काममें नहीं लग सकती? अगर ऐसा है तो मुझे इतने दिनों तक शिक्षा क्यों दी है? अपने ही हाथसे मेरा समस्त मन और प्राण जागरित करके अब आखिरको कामका रास्ता क्यों बन्द कर रहे हो?

चन्द्रमाधव बाबू इस उच्छ्वासके लिये बिलकुल तैयार नहीं थे। उन्होंने निर्मलाको किस भावसे गढ़कर तैयार किया है, यह बात वह स्वयं नहीं जानते थे। उन्होंने धीरे-धीरे कहा—निर्मल, एक समय तो तुम्हें विवाह करके गृहस्थीके काममें लग जाना होगा—चिरकुमार-सभाका काम—

"मैं विवाह नहीं करूँगी।"

"तब क्या करोगी?"

"देशके काममें तुम्हारी सहायता करूँगी।"

"हम लोग तो संन्यास-व्रत ग्रहण करनेके लिये तैयार हुए हैं।"

"भारतमें क्या कभी कोई संन्यासिनी नहीं हुई?"

चन्द्रमाधव बाबू स्तम्भित होकर खोए हुए बटनकी बात बिलकुल भूल गए और निरुत्तर होकर खड़े रहे।

उत्साह-दीप्तिसे मुँह लाल करके निर्मलाने कहा—मामा, अगर कोई लड़की तुम लोगोंका व्रत ग्रहण करनेके लिये सच्चे मनसे तैयार हो, तो क्यों उसे खुल्लमखुल्ला सभामें ग्रहण नहीं करोगे? मैं तुम्हारी कुमार-सभाका सभ्य क्यों नहीं बनूँगी?

निष्कलुषचित्त चन्द्रमाधवके निकट इसका कोई उत्तर नहीं था। फिर भी द्विधाकुण्ठित भावसे उन्होंने कहा—और लोग जो सभ्य हुए हैं—

निर्मला बात पूरी होनेके पहले ही बोल उठी—जो लोग सदस्य बने हैं, जो देशके हितका व्रत ग्रहण करेंगे, जो संन्यासी होने जा रहे हैं, वे क्या एक व्रतधारिणी स्त्रीको विना किसी सङ्कोचके अपने दलमें नहीं ले सकेंगे? अगर ऐसा है तो वे गृहस्थ बनकर घरमें ही बन्द रहें, उनसे कोई काम नहीं होगा!

चन्द्रमाधव बाबू सिर खुजलाने लगे। इतनेमें अकस्मात् उनके आस्तीनके भीतरसे खोया हुआ बटन नीचे गिर पड़ा। निर्मलाने हँसते हुए उसे उठाकर उनके गलेमें लगा दिया। पर चन्द्रमाधव बाबूने इस बातपर कुछ ध्यान नहीं दिया। वे पूर्ववत् सिर खुजलाते खुजलाते मस्तिष्ककी चिन्ताओंको उकसाने लगे।

नौकरने आकर खबर दी कि पूर्णबाबू आए हैं। निर्मलाके चले जानेपर उन्होंने प्रवेश किया। कहा—चन्द्रबाबू, आपने क्या उस बात पर कुछ विचार किया है? सभाको दूसरी जगह हटाकर ले जाना मेरी रायमें ठीक नहीं है!

चन्द्रबाबू—पूर्णबाबू, आज एक नई बात खड़ी हुई है। उसके सम्बन्धमें मैं तुम्हारे साथ आलोचना करना चाहता हूँ। मेरी एक भाञ्जी है, शायद तुम्हें मालूम होगा।

पूर्ण—(अजान बनकर) आपकी भाञ्जी?

चन्द्र—हाँ, उसका नाम निर्मला है। हमारी चिरकुमार-सभाके साथ उसके हृदयका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

पूर्ण—(विस्मित होकर) आप कहते क्या हैं ?

चन्द्र—मेरा विश्वास है कि उसका अनुराग और उत्साह हम लोगों-मेंसे किसीसे भी कम नहीं है।

पूर्ण—(उत्तेजित होकर) यह बात सुनकर तो हम लोगोंका उत्साह बढ़ जाता है। स्त्री होकर वह—

चन्द्रबाबू—मैं भी यही बात सोचता हूँ। स्त्रीका सरल उत्साह पुरुषके उत्साहमें मानों नया प्राण सञ्चारित कर सकता है—मैं आज स्वयं इस बातका अनुभव कर रहा हूँ।

पूर्ण—(आवेगपूर्ण होकर) मैं भी इसका अनुमान अच्छी तरहसे कर सकता हूँ।

चन्द्रबाबू—पूर्णबाबू, तुम्हारी भी क्या यही राय है ?

पूर्ण—क्या राय पूछते हैं ?

चन्द्रबाबू—अर्थात् जो स्त्री यथार्थमें सहृदय है, वह हमारे कठिन कर्त्तव्यमें बाधा न पहुँचाकर वास्तवमें सहायता कर सकती है ?

पूर्ण—(नेपथ्यकी ओर लक्ष्य करके ऊँचे स्वरसे) इस विषयमें मुझे लेशमात्र सन्देह नहीं है। स्त्रीकी सहृदयता पुरुषकी सहृदयताका एकमात्र आधार है। नवजात शिशुसदृश पुरुषके उत्साहको मनुष्य बनानेमें यदि कोई समर्थ हो सकता है तो वह केवल स्त्रीका उत्साह।

श्रीश और विपिनका प्रवेश।

श्रीश—इसमें सन्देह नहीं, पूर्णबाबू—पर क्या इस उत्साहके अभावसे ही आज सभामें चलनेमें देर हो रही है ?

पूर्ण इतने ज़ोरसे कह रहा था कि इन दो नवागतोंने वह सब बातें सीढ़ियोंपरसे सुन ली थीं।

चन्द्रबाबूने कहा—नहीं, नहीं, देर होनेका कारण यह है कि मेरे गलेका बटन खोजनेपर भी नहीं मिल रहा है।

श्रीश—आपके गलेमें एक बटन तो मौजूद है—फिर भी क्या एक और चाहिए? अगर चाहिए हो, तो छेद कहाँसे लाइएगा?

चन्द्रबाबू गलेमें हाथ लगाकर बोले—अच्छा, यह तो लगा हुआ है! और फिर कुछ लज्जित होकर हँसने लगे।

चन्द्र—हम सभी इस समय यहाँ उपस्थित हैं, इसलिये उस बात-की आलोचना हो जानी चाहिए—क्यों पूर्णबाबू?

अकस्मात् पूर्णबाबूका उत्साह बहुत-कुछ कम हो गया। निर्मलाका नाम लेकर सबके सामने आलोचना उत्थापित करना उसे रुचिकर नहीं मालूम हुआ। उसने कुछ कुण्ठितसा होकर कहा—यह बात तो ठीक है, पर यहाँ देरी तो हो रही है!

चन्द्र—नहीं, अभी समय है। श्रीशबाबू, तुम लोग ज़रा बैठो न, बात ज़रा सोचनेलायक है। मेरी एक भाञ्जी है, उसका नाम निर्मला है,—

पूर्ण अकस्मात् खाँसता हुआ लाल हो गया। उसने सोचा, चन्द्र-बाबूको व्यवहारज्ञान बिलकुल नहीं है—सारी दुनियाके आदमियोंके सामने अपनी भाञ्जीका परिचय देनेकी क्या जरूरत है? निर्मलाका उल्लेख न करके भी असली बातकी आलोचना की जा सकती है। पर चन्द्रबाबूका यह स्वभाव ही नहीं है कि वे किसी बातका कोई अंश वर्जित करके बात करें।

चन्द्र—हमारी कुमार-सभाके सभी उद्देश्योंके साथ उसकी सहानु-भूति है।

इतनी बड़ी खबर भी श्रीश और विपिन अविचलित तथा निरुत्सुक भावसे सुन रहे थे! पूर्ण केवल यही सोच रहा था कि निर्मलाके प्रसङ्गके सम्बन्धमें जो लोग जड़ पाषाणके समान उदासीन हैं, जो निर्मलाको पृथिवीकी साधारण स्त्रियोंसे अलग करके नहीं देखते, उनके निकट उसके नामका उल्लेख करनेकी आवश्यकता ही क्या है?

चन्द्र—यह बात मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि उसका उत्साह हममेंसे किसीसे भी कम नहीं है।

श्रीश और विपिनको बिलकुल अविचलित देखकर और उनसे बिलकुल उत्साह न पानेपर चन्द्रबाबू भी मन ही मन कुछ उत्तेजित हो रहे थे।

चन्द्र—यह बात मैंने अच्छी तरहसे सोच-समझकर निश्चित की है कि स्त्रियोंका उत्साह पुरुषोंके सभी महान् कार्योंका बहुत बड़ा अवलम्बन है। क्यों पूर्णबाबू, है न?

पूर्णबाबूकी इच्छा कोई भी बात कहनेकी नहीं थी, फिर भी उसने निस्तेज भावसे कहा—इसमें क्या शक!

चन्द्रबाबूने जब देखा कि उनके पालमें कहींसे कोई हवा नहीं लगी, तो वह उत्तेजित होकर बोल उठे—निर्मला अगर कुमार-सभाकी सभ्या होनेकी प्रार्थना करती है तो हम उसे क्यों मना करें?

पूर्णके ऊपर वज्रपात हुआ! उसने कहा—आप कहते क्या हैं चन्द्रबाबू?

श्रीशने पूर्णकी तरह अत्यन्त उग्र विस्मय प्रकाशित न करके कहा—हम लोगोंने कभी इस बातकी कल्पना नहीं की कि कोई स्त्री कभी हमारी सभाकी सदस्या बननेकी इच्छा प्रकट करेगी, इसलिये इस सम्बन्धमें हमारे यहाँ कोई नियम नहीं है—

न्यायपरायण विपिनने गम्भीरताके साथ कहा—कोई निषेध भी नहीं है।

असहिष्णु श्रीशने कहा—स्पष्ट निषेध चाहे न हो, पर हमारी सभाके जो उद्देश्य हैं वे स्त्रियोंके द्वारा साधित होनेवाले नहीं हैं।

कुमार-सभामें किसी स्त्रीको सदस्या बनानेमें विपिनको कोई विशेष उत्साह था, सो बात नहीं है, पर उसकी मानसप्रकृतिमें एक प्रकारका स्वाभाविक संयम था, इसलिये वह किसी श्रेणी विशेषके विरुद्ध किसी प्रकारकी इकतर्फा बात नहीं सह सकता था। उसने कहा—हमारी सभाका उद्देश्य सङ्कीर्ण नहीं है, और वृहत् उद्देश्यकी साधनामें विचित्र श्रेणी और विचित्र शक्तिके व्यक्तियोंको विचित्र चेष्टाओंसे प्रवृत्त होना पड़ता है। स्वदेशके हित-साधनमें एक स्त्री जैसा काम कर सकती है, वैसा तुम नहीं कर सकते, और तुम जैसा कर सकते हो, कोई स्त्री वैसा नहीं कर सकती। इसलिये सभाके उद्देश्यको सम्पूर्ण रूपसे साधित करनेके लिये तुम्हारी जितनी आवश्यकता है, स्त्री-सदस्योंकी भी उतनी ही है।

लेशमात्र उत्तेजना प्रकाशित न करके विपिन बहुत ही शान्तभावसे यह सब कह गया—पर श्रीश कुछ गरमाकर बोला—जो लोग काम नहीं करना चाहते हैं, वे ही उद्देश्यको बड़ा बना डालते हैं। यथार्थ कार्य करने जाओ, तो लक्ष्यको सीमाबद्ध करना पड़ता है। हमारी सभाके उद्देश्यको तुम जितना बड़ा समझकर निश्चिन्त बैठे हो, मैं उसे उतना बड़ा नहीं समझता।

विपिनने शान्तिके साथ कहा—हमारी सभाका कार्यक्षेत्र कमसे कम इतना बड़ा ज़रूर है कि तुम्हारे ग्रहण किए जानेसे मुझे परित्याग नहीं किया जाता, और मेरे ग्रहण किए जानेसे तुम्हें नहीं छोड़ना पड़ता है। तुमको और मुझे, दोनोंको अगर यहाँ स्थान मिला है, दोनोंकी ही

उपयोगिता और आवश्यकता अगर यहाँ है, तो और भी एक दूसरे भिन्न प्रकृतिके व्यक्तिके लिये भी स्थान होना क्या कठिन है?

श्रीशने चिढ़कर कहा—उदारता बहुत अच्छी चीज है, यह बात मैंने नीतिशास्त्रमें पढ़ी है। मैं तुम्हारी उस उदारताको नष्ट नहीं करना चाहता; केवल विभक्त करना चाहता हूँ। स्त्रियाँ जो काम कर सकती हैं, उसके लिये वे स्वतन्त्र सभा स्थापित करें; हम उनकी उस सभाके सदस्य बननेकी प्रार्थना नहीं करेंगे; और हमारी सभा भी केवल हमारी ही रहे! नहीं तो हम एक दूसरेके काममें केवल बाधा डाल सकते हैं, और कुछ नहीं कर सकते। सिर अगर चिन्ता करता है तो करे; पर पेटको पाचनका ही काम करना चाहिए! यदि पाक-यन्त्र सिरमें और मस्तिष्क पेटमें प्रवेश करनेकी चेष्टा न करे, तो बस काफी है!

विपिन—परन्तु इसीलिए सिरको काट करके एक जगह और पाक-यन्त्रको दूसरी जगह रखनेसे भी तो काम नहीं चल सकता!

श्रीशने खीझकर कहा—उपमा कोई युक्ति तो है नहीं कि उसका खंडन करनेसे मेरी बातका खण्डन हो जायगा! उपमाका काम कुछ ही दूर तक रहता है—

विपिन—अर्थात् जितनी दूर तक वह तुम्हारी युक्तिको सहायता करती है।

इन दो परम मित्रोंके बीच इस प्रकारका विवाद सदा ही घटित होता रहता है। पूर्ण अत्यन्त अन्यमनस्क होकर बैठा था। उसने कहा—विपिन बाबू, मेरी राय यह है कि हमारे इन सब कामोंमें यदि स्त्रियाँ भाग लेंगीं, तो इससे उनका माधुर्य नष्ट हो जायगा।

चन्द्रबाबूने एक किताब आँखोंके बहुत निकट लाकर कहा—जो माधुर्य महत् कार्य करने लगनेसे नष्ट हो जाता हो, वह रक्षाके योग्य भी नहीं है।

श्रीश बोला—नहीं चन्द्रबाबू, मैं ये सब सौन्दर्य और माधुर्यकी बातें नहीं करता । हम लोगोंको सैनिकोंकी तरह एक चालसे चलना होगा; अनभ्यास या स्वाभाविक दुर्बलताके कारण जिनके पीछे रह जानेका डर है, उन्हें लेकर भारप्रस्त होनेसे हमारा समस्त कार्य ही व्यर्थ हो जायगा !

इसी समय निर्मला अकुण्ठित मर्यादाके साथ वहाँ प्रवेश करके और सबको नमस्कार करके खड़ी हो गई । एकाएक सब ही स्तम्भित हो रहे । यद्यपि एक अश्रुपूर्ण क्षोभसे उसका कण्ठस्वर आर्द्र था, तथापि उसने दृढ़स्वरसे कहा—आप लोगोंका क्या उद्देश्य है और आप लोग देशके कामके लिये कितनी दूर तक जानेके लिये तैयार हैं, यह मैं कुछ भी नहीं जानती; पर मैं अपने मामाको जानती हूँ । वह जिस रास्ते चले जा रहे हैं, आप लोग क्यों मुझे उस रास्तेपर उनके पीछे चलनेमें बाधा डाल रहे हैं !

श्रीश निरुत्तर था, पूर्ण कुण्ठित और अनुतप्त था, विपिन प्रशान्त और गम्भीर था, चन्द्रबाबू सुगम्भीर चिन्तामें मग्न थे ।

पूर्ण और श्रीशके प्रति वर्षाकालकी सूर्य-रश्मियोंकी तरह अश्रुजलस्नात कटाक्षपात करके निर्मलाने कहा—मैं अगर काम करना चाहती हूँ, अगर मृत्युपर्यन्त सभी शुभ चेष्टाओंसे मैं उनकी अनुवर्तिनी होना चाहती हूँ जो कि बाल्यकालसे मेरे गुरु हैं, तो आप लोग केवल तर्क-द्वारा मेरी अयोग्यता प्रमाणित करनेकी चेष्टा क्यों कर रहे हैं ! आप लोग मुझे क्या जानते हैं !

श्रीश स्तब्ध था और पूर्ण पसीनेसे तर !

निर्मला—मैं आप लोगोंकी कुमार-सभा या अन्य किसी सभाको नहीं जानती । पर जिनकी शिक्षासे मैं मनुष्य बनी हूँ, वह जब

कुमार-सभाका आश्रय पकड़कर ही अपने जीवनके सभी उद्देश्योंके साधनमें प्रवृत्त हुए हैं तब इस कुमार-सभासे आप लोग मुझे अलग नहीं कर सकेंगे! (चन्द्रबाबूकी ओर ताककर) तुम अगर यह कहो कि मैं तुम्हारे कामके योग्य नहीं हूँ, तो मैं बिदा हो जाऊँगी। पर ये लोग मुझे क्या जानते हैं? ये सब लोग क्यों मुझे तुम्हारे अनुष्ठानसे अलग करनेके लिये तर्क कर रहे हैं?

श्रीशने नम्रतापूर्वक कहा—माफ़ कीजिए, मैंने आपके सम्बन्धमें कोई तर्क नहीं किया। मैं साधारणतः स्त्रीजातिके सम्बन्धमें ही कह रहा था—

निर्मला—मैं स्त्री-जाति और पुरुष-जातिके प्रभेदको लेकर कोई विचार नहीं करना चाहती—मैं अपना अन्तःकरण जानती हूँ, और जिनके उन्नत दृष्टान्तका आश्रय मैंने पकड़ा है, उनके अन्तःकरणको जानती हूँ। काममें लगनेके लिये मुझे इससे ज्यादा और कुछ जाननेकी आवश्यकता नहीं है।

चन्द्रबाबू अपना दाहिना हाथ आँखोंके अत्यन्त निकट लाकर देखने लगे। पूर्ण नमक-मिर्च लगाकर, अच्छी तरहसे सजाकर कुछ कहना चाहता था, पर उसके मुँहसे एक बात भी न निकली। जब निर्मला दरवाजेकी ओटमें खड़ी रहती थी तब उसकी वाक्शक्ति जैसी प्रखर हो जाती थी, इस समय उसका कुछ भी परिचय न मिला।

फिर भी उसने मन-ही-मन निर्मलाके इस व्यवहारपर बहुत कुछ आपत्ति करके कहा—देवि, इस पङ्किल पृथ्वीके काममें क्यों अपने दो पवित्र हाथोंका प्रयोग करना चाहती हो?

बात मनमें जिस प्रकार जमी हुई थी, मुँहसे वैसी नहीं सुनाई दी। ज्यों ही कह चुका त्यों ही उसे मालूम हुआ कि गद्यमें पद्यकी तरह उसने

कुछ ज्यादती कर दी है। लज्जाके कारण उसके कान तक लाल हो गए। विपिनने स्वाभाविक गम्भीर और शान्त स्वरमें कहा—पृथ्वी जितनी अधिक पङ्किल है, उसका संशोधन-कार्य उतना ही अधिक पवित्र है।

इस बातसे कृतज्ञ निर्मलाके मुँहका भाव देखकर पूर्ण सोचने लगा—अहा, यह बात तो मुझे कहनी चाहिए थी! विपिनके ऊपर ईर्ष्याके कारण उसे क्रोध आ गया।

श्रीश—सभाके अधिवेशनमें स्त्री सभ्य होनेके सम्बन्धमें नियमपूर्वक प्रस्ताव रक्खा जायगा। उसपर जो कुछ निश्चय होगा वह आपको जतलाऊँगा।

निर्मला एक पल भी न ठहरकर पालवाली नावकी तरह निःशब्द जाने लगी। अचानक अध्यापकने सचेत होकर पुकारा—निर्मल, मेरे गलेका बटन क्या हुआ?

निर्मलाने लज्जापूर्वक मुस्कुराकर मृदुकण्ठसे कहा—गलेमें ही है।

चन्द्रबाबू गलेमें हाथ लगाकर "हाँ, हाँ, है तो" कहके तीनों छात्रोंकी ओर ताकते हुए हँसने लगे।

८

नृप—आजकल तू बीच-बीचमें क्यों इतनी गम्भीर रहती है, बतला तो नीरू?

नीरू—हमारे घरमें जितना गाम्भीर्य है वह सब क्या केवल तेरा ही है? मैं गम्भीर रहती हूँ, मेरी खुशी। इसमें तेरा क्या?

नृप—तू क्या सोचा करती है, यह मैं खूब जानती हूँ।

नीरू—तू इतना अन्दाज काहेको करती है? अब तो तेरा अपने लिये सोचनेका समय हो गया है।

नृपने नीरूको गलेसे लगाकर कहा—तू सोच रही है, दय्या री दय्या! हम लोग भी क्या जञ्जाल हैं! हमें बिदा करदेनेमें भी इतनी चिन्ता—इतना झंझट है!

नीरू—तो हम कुछ बाहर फेंके जानेकी चीजें तो हैं नहीं कि यों-ही छोड़ देनेसे चल जायगा! हम लोगोंके लिये यह जो इतना कुहराम मच रहा है, सो तो गौरवकी ही बात है! कुमारसम्भवमें तूने पढ़ा ही है कि गौरीके विवाहके लिये एक जीता-जागता देवता जलकर भस्म हो गया! अगर किसी कविके कानोंमें यह बात चली जाय, तो हम लोगोंके विवाहकी भी एक वर्णना बाहर निकल पड़े!

नृप—नहीं बहन, मुझे बड़ी शरम माळूम देती है!

नीरू—और क्या मुझे नहीं माळूम देती? मैं क्या बेहया हूँ? पर क्या किया जाय! स्कूलमें जिस दिन प्राइज़ लेने गई थी, उस दिन बड़ा सङ्कोच हुआ था, पर दूसरे साल भी प्राइज लेनेके लिये रातोंरात जाकर सबक याद किया था। सङ्कोच भी होता है, पर प्राइज भी नहीं छोड़ सकती, हमारा ऐसा ही स्वभाव है।

नृप—अच्छा नीरू, अबकी जिस प्राइजकी बात छिड़ी है, उसके लिये क्या तू बहुत उत्सुक है?

नीरू—कौन प्राइज? चिरकुमार-सभाके दो सभ्य?

नृप—कोई भी क्यों न हो, तू तो जानती है।

नीरू—अच्छा सच बात कहूँ? (नृपके गले लगकर कानमें कहती है) सुनती हूँ कुमार-सभाके दो सदस्योंमें बड़ा हेलमेल है। अगर हम दोनों दो मित्रोंके हाथ पड़ें, तो ब्याह होनेपर भी अलग नहीं हो

सकेंगी—नहीं तो हममेंसे न मालूम कौन कहाँ चली जायगी, इसका क्या ठिकाना ! इसी लिये उन युगल देवताओंके लिये पूजाका इतना आयोजन किया है ! हाथ जोड़कर मन-ही-मन कहती हूँ—हे अश्विनी-कुमारयुगल ! हम दो बहनोंको डंठलके दो फूलोंकी तरह एक साथ ग्रहण करो !

विरहकी सम्भावनाके उल्लेखमात्रसे दोनों बहनें एक दूसरेसे कसकर लिपट गईं और नृप किसी तरह भी आँसुओंको न रोक सकी ।

नृप—अच्छा नीरू, हम मँझली दीदीको छोड़कर कैसे जायँगी, बतला तो ! हम दोनोंके चले जानेपर उसका और कौन रहेगा ?

नीरू—यह बात मैंने बहुत सोची है । अगर रहने देंगे तो क्या हम छोड़ जायँगी ? बहिन, उसके तो स्वामी नहीं हैं । समझ लो कि हमारे भी स्वामी नहीं हैं । मँझली दीदीसे ज्यादा सुख पानेकी हमें क्या जरूरत है ?

पुरुषवेशधारिणी शैलबालाका प्रवेश ।

नीरुने मेजके ऊपर रक्खी हुई थालीमेंसे एक फूलकी माला उठाकर शैलके गलेमें पहना दी और कहा—हम दो स्वयम्वराएँ तुम्हें पतिके रूपमें वरण करती हैं—यह कहके उसने शैलको प्रणाम किया ।

शैल—यह क्या करती हो ?

नीरू—घबराओ मत, हम दो सौतें मिलकर तुमसे झगड़ा नहीं करेंगी । अगर करेंगी भी, तो मँझली दीदी मुझसे नहीं जीतेगी, मैं अकेले ही निबट लूँगी, तुम्हें कष्ट न उठाना होगा । सच कहती हूँ मँझली दीदी, तुम्हारे पास हम जैसे लाड़-प्यारसे रहती हैं, वैसा लाड़-प्यार हमें कहाँ मिलेगा ? तब क्यों तुम हमें दूसरोंके माथे मढ़ना चाहती हो ?

नृपकी दोनों आँखोंसे फिर आँसुओंकी झड़ी लग गई । "यह क्या करती है नृप, छिः !" कहके शैलने उसकी आँखें पोंछ दीं और कहा—तुम्हें किस तरह सुख मिलेगा, यह बात तुम लोग जानती हो ? मुझे पाकर अगर तुम दोनोंका जीवन सार्थक होता, तो क्या मैं कभी तुम्हें किसी दूसरेके हाथ देनेको राजी होती ?

तीनों मिलकर एक अश्रुवर्षणलीलाकी तैयारी कर ही रही थीं कि इतनेमें रसिक दादाने प्रवेश करके कातर स्वरसे कहा—मुझ जैसे असभ्यको तुम लोगोंने सभ्य तो बना दिया है, पर यह तो सिखला दो कि मुझे सभामें किस तरह वर्ताव करना होगा—सभाका जल्सा आज यहीं होनेवाला है ।

नीरूने कहा—फिर वही पुरानी दिल्लगी ! परसोंसे तुम यही सभ्य-असभ्यकी बात कर रहे हो !

रसिक—जिसे जन्म दिया जाता है, उसके ऊपर क्या माया नहीं होती ? दिल्लगी जब एक बार मुँहसे निकल पड़ी, तो क्या उसे उसी दम राजपूतकी कन्याकी तरह गला घोंटकर मार देना चाहिए ? असल बात यह है कि जबतक कुमार-सभा यहाँ रहेगी, तबतक तुम लोगोंको यह दिल्लगी सुबह-शाम सुननी ही पड़ेगी ।

नीरू—तब तो उसको जल्दी ही समाप्त कर देना अच्छा । दीदी, अब दया मायाका काम नहीं है—रसिक दादाकी रसिकता या दिल्लगीको अब हम पुरानी नहीं होने देंगी । चिरकुमारसभाका चिरत्व हम शीघ्र ही दूर कर देंगी और तभी हमारा विश्वविजयिनी नारी नाम सार्थक होगा ! किस प्रकार आक्रमण करना होगा, इसका कोई 'प्लान' तुमने बना रक्खा है ?

शैल—कुछ भी नहीं। मैदानमें उपस्थित होने पर उस समय जैसा कुछ दिमाग़में आ जाय।

नीरू—जिस समय मेरी ज़रूरत हो, रणभेरी बजा देना, मैं तत्काल ही आपहुँचूँगी। मैं क्या कुमार-सभासे डरती हूँ ? क्या इन मृणाल-भुजाओंमें बल नहीं है ?

अक्षयने कमरेमें प्रवेश करते हुए कहा—आजकी सभामें विदुषी-मण्डलीसे मैं एक ऐतिहासिक प्रश्न करना चाहता हूँ।

शैल—फ़रमाइए।

अक्षय—दो डालोंपर खड़े होकर उन्हींको किसने काटना चाहा था ?

नृपने चटसे जवाब दिया—मैं जानती हूँ जिज्जाजी, कालिदासने।

अक्षय—नहीं, और भी एक बड़े आदमीने। श्रीअक्षयकुमार मुखोपाध्यायने भी यही काम किया है।

नीरू—वे दो डालें कौन-कौन हैं ?

अक्षयने बाँई ओर नीरूको खींचकर कहा—"एक यह है" और दाहिनी ओर नृपको खींचकर कहा—"दूसरी यह है।"

नीरू—और कुल्हाड़ा शायद आज आनेवाला है ?

अक्षय—आनेवाला क्यों, आ ही चुका समझो। यह सुनो, सीढ़ियोंमें पाँवकी आहट सुनाई देती है।

सुनते ही भगदड़ मच गई। शैल भागते समय रसिक दादाको भी खींच ले गई। चूड़ियोंकी झङ्कार और त्रस्त पदपल्लवोंके द्रुत पतनका शब्द लीन होनेके पहले ही श्रीश और विपिन प्रवेश करते हैं। झमझम शब्द क्रमशः दूर और दूर होने लगा। कमरेके आलोड़ित पवनमें एसेन्स और सुगन्धित तैलका कोमल परिमल मानों परित्यक्त

असबाबमें अपने पुराने आश्रयोंको खोजते हुए दीर्घ श्वास छोड़ता हुआ घूमने लगा।

विज्ञानका कथन है कि शक्तिका नाश नहीं होता, रूपान्तर होता है। कमरेसे तीन बहनोंके पलायनसे जो एक सुगन्धित आन्दोलन उठा था, वह क्या पहले कुमारयुगलकी विचित्र स्नायुमण्डलीमें एक निगूढ़ स्पन्दनके रूपमें और इसके बाद ही उनके अन्तःकरणके एक कोनेमें कुछ समयके लिये अनिर्वचनीय पुलकके रूपमें परिणत नहीं हुआ? पर संसारमें जहाँसे इतिहास आरम्भ होता है उसके बहुत बादके अध्यायसे वह लिखा जाता है;—प्रथम स्पर्श, स्पन्दन, आन्दोलन और विद्युत्की चमक, ये सब प्रकाशके अतीत हैं।

परस्पर नमस्कारके बाद अक्षयने पूछा—पूर्णबाबू नहीं आए?

श्रीश—चन्द्रबाबूके मकानमें उनके साथ मुलाक़ात हुई थी, पर अचानक उनकी तबीयत खराब हो गई, इस लिये वह आज नहीं आ सके।

अक्षय—(रास्तेकी तरफ़ देखकर) ज़रा देर आप लोग तशरीफ़ रक्खें—मैं चन्द्रबाबूके इन्तजारमें दरवाज़ेके पास खड़ा रहता हूँ। वह आँखसे कम देखते हैं, न मालूम कहाँसे कहाँ चले जायँगे। यहाँ पास ही कुछ ऐसे स्थान भी हैं जहाँ कुमार-सभाका अधिवेशन किसी प्रकार प्रार्थनीय नहीं है।—यह कहकर अक्षयबाबू नीचे चले गए।

आज चन्द्रबाबूके मकानमें एकाएक निर्मलाने आविर्भूत होकर चिर-कुमारदलके शान्त मनमें जो एक मन्थन उत्पन्न कर दिया था, उसका अभिघात सम्भवतः अभीतक श्रीशके मस्तकमें हो रहा था। वह दृश्य अपूर्व था, घटना अभावनीय थी, और निर्मलाके कमनीय मुखमें जो एक दीप्ति थी और उसकी बातोंमें जो एक आन्तरिक आवेग था, उससे

वे विस्मित हो गए थे और उनकी स्वाभाविक चिन्ता-धारा विक्षिप्त हो गई थी। वे लेशमात्र प्रस्तुत नहीं थे, इसीलिये इस आकस्मिक आघातसे ही विचलित हो गए थे। तर्कके बीचमें, अकस्मात् एक ऐसी जगहसे, इस तरह, ऐसा उत्तर मिलेगा, इस बातकी कल्पना उन्होंने स्वप्नमें भी नहीं की थी; इसी कारण वह उत्तर उन्हें इतना प्रबल जान पड़ा। उत्तरका प्रत्युत्तर दिया जा सकता था, पर उस आवेगकम्पित ललित कण्ठका उस गूढ़, अश्रुकरुण, विशाल कृष्ण नेत्रोंकी दीप्तिच्छटाका, प्रत्युत्तर कहाँ पाया जाता? पुरुषके मस्तिष्कमें अच्छी अच्छी युक्तियाँ रह सकती हैं, पर जो रक्त अधर बात कहते-कहते स्फुरित होने लगते हैं, जो कोमल कपोल देखते देखते भावके आभाससे करुणारञ्जित हो उठते हैं, उनके विरुद्ध खड़ी की जा सके ऐसी पुरुषके हाथमें क्या चीज है!

रास्तेमें आते आते दोनों मित्रोंमें कोई बात नहीं हुई थी। यहाँ आनेपर कमरेमें प्रवेश करनेके पहले ही जो शब्द सुनाई दिए उनकी ओर और किसी दिन श्रीश शायद ध्यान न देता, पर आज वह चौकन्ना था। थोड़ी ही देर पहले कमरेमें रमणियोंका जमघट था, कमरेमें प्रवेश करते ही वह यह बात समझ गया।

अक्षयके चले जानेपर श्रीशने कमरेको अच्छी तरह देख डाला। मेजके ऊपर फ़ूलदानमें फ़ूल सजे थे। उन्हें देखकर वह विचलित हो उठा। इसका एक कारण यह था कि श्रीश फ़ूलोंको बहुत पसन्द करता था। दूसरा कारण यह था कि श्रीशने कल्पनाकी आँखोंसे देखा कि कुछ ही देर पहले जिनके सुनिपुण दक्षिण हस्तोंने ये फ़ूल सजाए हैं, वे ही अभी त्रस्तव्यस्त होकर कमरेसे भाग गई हैं।

विपिनने कुछ मुस्कुराकर कहा—कुछ भी हो भाई, पर यह कमरा चिरकुमार-सभाके योग्य तो नहीं है।

अकस्मात् मौन-भङ्ग होनेसे श्रीशने चकित होकर पूछा—क्यों नहीं है?

विपिनने कहा—कमरेकी सजावट तुम्हारे नवीन संन्यासियोंके लिये भी कुछ अधिक मालूम होती है।

श्रीश—मेरे संन्यास-धर्मके लिए कोई भी चीज़ अधिक नहीं हो सकती।

विपिन—केवल स्त्रीको छोड़कर!

श्रीशने कहा—हाँ, केवल यही एक बात है!—पर और दिनोंकी तरह उसकी इस बातमें आज ज़ोर नहीं था।

विपिनने कहा—दीवारकी तसबीरों और दूसरी भी अनेक चीजोंमें नारी-जातिका अधिक परिचय पाया जा रहा है।

श्रीश—संसारमें नारी-जातिका परिचय तो सर्वत्र ही पाया जाता है।

विपिन—यह तो है ही। कवियोंकी बातमें अगर विश्वास किया जाय तो चाँदमें, फूलोंमें, लताओंमें, पल्लवोंमें, कहीं भी, नारी-जातिके परिचयसे हतभाग्य पुरुष-जाति छुटकारा नहीं पा सकती।

श्रीशने मुस्कुराकर कहा—मैंने सोच रक्खा था कि केवल चन्द्रबाबूके उस पहले मञ्जिलवाले कमरेसे ही रमणीका कोई सम्बन्ध नहीं है, पर आज वह भ्रम भी दूर हो गया। नहीं, वे समस्त पृथ्वीमें व्याप्त हैं।

विपिन—बेचारे इने-गिने कुमारोंके लिये भी कहीं कोई जगह खाली नहीं रक्खी। सभाके लिये ठीक जगह ही मिलनी मुश्किल हो गई है।

श्रीश—यह देखो!—कहके कोनेकी एक तिपाईपरसे बाल बाँधनेके दो काँटे उठाकर उसने विपिनको दिखलाए।

विपिनने उनपर नजर फेरकर कहा—भाई, सचमुच ही यह जगह कुमारोंके लिये निष्कण्टक नहीं है।

श्रीश—फूल भी हैं और काँटे भी हैं।

विपिन—यही तो मुश्किल है। फूल न होकर अगर खाली काँटे ही हों, तो उन्हें बचाकर चला जा सकता है!

श्रीश दूसरे कोनेमें जाकर ताकमें रक्खी हुई किताबें उठाकर देखने लगा। कुछ उपन्यास थे और कुछ अँगरेजी काव्य-ग्रन्थ। पेल्ग्रेवके गीतिकाव्यका स्वर्ण-भाण्डार खोलकर उसने देखा कि पृष्ठोंके हासिएपर किसी स्त्रीके हाथकी लिपिमें नोट लिखे थे। तब उसने सबसे पहला पृष्ठ उलटाकर देखा और देखकर विपिनके सामने पुस्तक रख दी।

विपिनने पढ़कर कहा—'नृपबाला!' मेरा तो यह ख्याल है कि यह नाम मर्दका नहीं है। क्यों?

श्रीश—मेरा भी यही ख्याल है। और यह नाम भी अन्यजातीय मालूम होता है भाई!—यह कहके उसने एक और किताब दिखाई।

विपिनने कहा—'नीरबाला!' यह नाम काव्यग्रन्थमें तो चल सकता है, पर कुमार-सभामें—

श्रीश—कुमार-सभामें भी अगर यह नामधरिणी स्त्रियाँ चली आवें, तो ऐसा कोई बलवान् मैं अपनी सभामें नहीं देखता जो उनके लिये द्वार रुद्ध कर सके!

विपिन—पूर्ण तो एक ही चोटमें घायल हो गया है, बचेगा या नहीं, इसमें सन्देह है!

श्रीश—सो कैसे?

विपिन—तुमने क्या ख्याल नहीं किया?

प्रशान्तस्वभाव विपिनको देखकर यह मालूम नहीं होता कि वह कुछ देखता है; पर उसकी नजर बड़ी पैनी है। उसने पूर्णको परम दुर्बल अवस्थामें देख लिया है।

श्रीश—नहीं, नहीं, यह केवल तुम्हारा अनुमान है।

विपिन—हृदय तो अनुमानकी ही चीज है, न तो वह दिखाई देता है और न छुआ ही जाता है।

श्रीश कुछ ठहरकर सोचने लगा। उसने कहा—पूर्णकी बीमारी भी तब क्या वैद्य-शास्त्रके अन्तर्गत नहीं है?

विपिन—नहीं, इन सब व्याधियोंके सम्बन्धमें किसी भी मेडिकल कॉलेजमें कोई लेक्चर नहीं दिया जाता।

श्रीश ठठाकर हँसने लगा। गम्भीर विपिन मुस्कुराता हुआ चुप हो रहा।

चन्द्रबाबूने प्रवेश करके कहा—आजके तर्कवितर्ककी उत्तेजनासे पूर्णबाबूकी तबीयत अचानक खराब हो गई थी, यह देखकर मैंने उन्हें उनके घर पहुँचा देना उचित समझा।

श्रीश विपिनके मुँहकी ओर ताककर कुछ मुस्कुराया। विपिनने गम्भीर भावसे कहा—पूर्णबाबूकी वर्तमान दुर्बल अवस्था देखकर यही ख्याल आता है कि उन्हें पहलेसे ही सावधान होना चाहिए था।

चन्द्रमाधवने सरलताके साथ उत्तर दिया—पूर्णबाबू तो विशेष असावधान मालूम नहीं देते!

चन्द्रमाधव बाबूके सभापतिका आसन ग्रहण करनेके पहले ही अक्षय बाबूने रसिक दादाके साथ कमरेमें प्रवेश किया और कहा—माफ़ कीजिए, इस नवीन सभ्यको आप लोगोंके हाथमें सौंपकर ही मैं चला जाऊँगा।

रसिकने हँसकर कहा—पर मेरी नवीनता बाहरसे विशेष प्रत्यक्षगोचर नहीं है—

अक्षय—अत्यन्त नम्रताके कारण इन्होंने उसे बाह्य प्राचीनताके द्वारा ढक रक्खा है—धीरे-धीरे उसका परिचय मिलेगा। यह 'यथा नाम तथा गुण' हैं। इनका नाम श्रीरसिक चक्रवर्त्ती है।

सुनकर श्रीश और विपिन मुस्कुराते हुए रसिककी ओर ताकने लगे। रसिकने कहा—पिताजीने मेरी रसज्ञताके सम्बन्धमें परिचय पानेके पहले ही रसिक नाम रख दिया था। अब पितृ-सत्य पालनके लिये मुझे रसिकताकी चेष्टा करनी पड़ती है। इसके बाद "यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।"

अक्षयबाबू चले गए। कमरेमें दो मिट्टीके तेलके लैम्प जल रहे थे। वे दोनों फ़ीरोज़ी रेशमके आवरणसे मण्डित थे। उस आवरणको भेदकर कमरेकी रोशनी हलकी और रङ्गीन हो गई थी।

पुरुषवेशी शैलने आकर सबको नमस्कार किया। क्षीणदृष्टि चन्द्र-माधव बाबूने उसे अस्पष्ट रूपसे देखा और विपिन तथा श्रीश उसकी ओर ताकते रह गए।

शैलके पीछे दो-नौकर हाथोंमें भोजन-पात्र लेकर उपस्थित हुए। शैल चाँदीकी छोटी-छोटी थालियोंको सफ़ेद पत्थरकी मेजपर सजाने लगी। प्रथम परिचयकी अदमनीय लज्जाको उसने इस प्रकार अतिथि-सत्कारके द्वारा छिपानेकी चेष्टा की।

रसिकने कहा—यह आप लोगोंकी सभाके एक और नवीन सभ्य हैं। इनकी नवीनताके सम्बन्धमें कोई तर्क नहीं उठ सकता। ठीक मेरे विपरीत हैं। बुद्धिकी प्रवीणता इन्होंने बाह्य नवीनतासे ढक रक्खी है। आप लोगोंको कुछ विस्मय हुआ जान पड़ता है। होना ही चाहिए। इन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है कि यह बालक हैं, पर मैं इस सम्ब-न्धमें जामिन हूँ—यह बालक नहीं हैं।

चन्द्र—इनका नाम ?

रसिक—श्रीअबलाकान्त चट्टोपाध्याय।

श्रीश बोल उठा—अबलाकान्त ?

रसिक—मैं मानता हूँ कि यह नाम हमारी सभाके लिये उपयुक्त नहीं है, परन्तु नामके प्रति मैं बहुत आसक्त नहीं हूँ—अगर आप लोग इसे बदलकर विक्रमसिंह या भीमसेन या अथवा और कोई उपयुक्त नाम रक्खें, तो यह एतराज नहीं करेंगे। यद्यपि शास्त्रमें लिखा है कि 'स्वनामा पुरुषो धन्यः' परन्तु यह अबलाकान्त नामके द्वारा ही जगत्में पौरुष अर्जन करनेके लिये व्याकुल नहीं हैं।

श्रीशने कहा—आप कहते क्या हैं! नाम कुछ बदनका कपड़ा तो है नहीं कि बदल देनेसे काम चल जायगा।

रसिक—यह आपका आजकलका संस्कार है श्रीशबाबू। नामको प्राचीन लोग पोशाकमें ही गिनते थे। देखिए न, अर्जुनका पितृदत्त नाम क्या था, यह बतलाना कठिन है—पार्थ, धनञ्जय, सव्यसाची आदि जो जिसके मुँहमें आया उसी नामसे लोग उसे पुकारते थे। देखिए, आप लोग नामको सत्य न समझ बैठें; इन्हें अगर आप लोग कभी-भूलसे अबलाकान्त न भी कहें, तो यह आपपर मानहानिका मुक़द्दमा दायर करनेवाले नहीं।

श्रीशने हँसकर कहा—आप जब इतना अभय दे रहे हैं, तो हम लोग बिल्कुल निश्चिन्त हुए जाते हैं—परन्तु इनके क्षमा-गुणकी परीक्षाकी शायद ही कभी आवश्यकता हो, हम लोग नाम नहीं भूलेंगे।

रसिक—आप न भूलें पर मैं भूल सकता हूँ। यह सम्बन्धमें मेरे पोते होते हैं—इसलिये इनके सम्बन्धमें मेरी जबान कुछ ढीली है। यदि कभी कुछका कुछ कह बैठूँ तो आप लोग माफ़ कीजिएगा।

श्रीशने उठकर कहा—अबलाकान्त बाबू, आपने यह सब क्या आयोजन किया है ? हमारी सभाके कार्यक्रममें मिष्टान्नका तो उल्लेख नहीं था !

रसिक—(उठकर) इस त्रुटिका जिन्होंने संशोधन किया है, उन्हें मैं सभाकी तरफ़से धन्यवाद देता हूँ।

श्रीशके मुँहकी ओर न ताककर थालियाँ सजाकर रखते हुए शैलने कहा—श्रीशबाबू, भोजन भी क्या आप लोगोंके नियमके विरुद्ध है ? श्रीशने देखा कि यह कण्ठस्वर भी अबला नामके उपयुक्त है। उसने कहा—इस सभ्यकी आकृति ही अच्छी तरह देखनेसे इस सम्बन्धमें कोई संशय नहीं रह सकता। यह कहकर वह विपुलायतन विपिनको खींच लाया। विपिनने कहा—अबलाकान्त बाबू, अगर आप नियमकी बात कहते हैं तो संसारकी श्रेष्ठ वस्तु कोई भी हो, वह अपना नियम आप सृजन कर लेती है; क्षमताशाली लेखक अपने ही नियमके अनुसार चलता है, श्रेष्ठ काव्य समालोचकका नियम नहीं मानता। इसी तरह यह जो मिष्टान्न संग्रह किया गया है, सो इसके सम्बन्धमें भी कोई नियम लागू नहीं हो सकता—इसका एकमात्र नियम यह है कि बैठ जाना और निःशेष कर डालना। जब तक यह मिष्टान्न मौजूद है तब तक जगत्के अन्य समस्त नियमोंको दरवाज़ेके पास ठहरे रहना पड़ेगा।

श्रीशने कहा—तुम्हें यह हुआ क्या है विपिन ? तुम्हें खाते तो मैंने जरूर देखा है, परन्तु एक साँसमें इतनी बातें कहते कभी नहीं सुना !

विपिन—रसना उत्तेजित हो उठी है, इसलिये अब सबल वाक्य कहना मेरे लिये सहज हो गया है। हाय, जो मेरी जीवनी लिखेंगे, वह इस समय कहाँ हैं !

रसिकने सिरके गड्ढे स्थानपर हाथ फेरते हुए कहा—मुझसे इस कामकी आशा न कीजिएगा, मैं इतने अधिक समय तक नहीं टिक सकूँगा।

नए स्थानकी विलासपूर्ण सजावटके बीच आकर चन्द्रमाधवबाबूका मन विचलित हो उठा था। उनका उत्साह-स्रोत ठीक पथसे होकर नहीं बह रहा था। वह कभी कार्य-विवरणका रजिस्टर और कभी अपना कर-तल अकारण देख रहे थे। शैलने उनके पास जाकर नम्रतापूर्वक निवेदन किया—चन्द्रबाबू, अगर मैंने सभाके काममें कुछ बाधा डाली हो तो माफ़ कीजिएगा, पर कुछ जलपान—

चन्द्रबाबूने शैलको निकट पाकर उसका मुँह निरीक्षण करके कहा—इन सब सामाजिक विधानोंसे सभाके कार्यमें विघ्न उपस्थित होता है, इसमें सन्देह नहीं।

रसिकने कहा—अच्छा परीक्षा करके देखिए, मिष्टान्नसे अगर सभाका काम रुक जाय तो—

विपिनने मृदु स्वरमें कहा—तो भविष्यमें सभा बन्द करके मिष्टान्न ही चलाना ठीक होगा—

चन्द्रबाबू जब शैलको ताक-ताककर उसके सुन्दर सुकुमार मुखका भाव मनमें अङ्कित करनेमें समर्थ हो गए, तब शैलको खिन्न करनेकी उनकी प्रवृत्ति नहीं हुई।

यहाँपर यह कह देना आवश्यक है कि विपिन थोड़ी ही देर पहले घरसे जलपान करके बाहर निकला था, भोजनके प्रति उसकी नामको भी इच्छा नहीं थी। पर इस प्रियदर्शन कुमारको देखकर, विशेष करके इसके मुखके अत्यन्त कोमल स्मित हास्यके कारण, विपुल बलशाली

विपिनका चित्त इतना स्नेहाकृष्ट हो गया था कि उससे अस्वाभाविक मुखरताके साथ मिष्टान्नके प्रति अतिरिक्त लोलुपता प्रकाशित किये बिना नहीं रहा गया। रोग-भयसे भीत श्रीशको कुसमयमें खानेका साहस नहीं होता था; पर उसने भी ख्याल किया कि न खानेसे इस तरुण कुमारके प्रति कठोर रूढ़ता होगी।

श्रीशने कहा—आइए रसिकबाबू, आप तो उठते ही नहीं!

रसिक—मैं नित्य माँगकर और कभी कभी छीना-झपटी करके भी खाया करता था, परन्तु आज चिरकुमार-सभाके सभ्यकी हैसियतसे और आप लोगोंके संसर्ग-गौरवसे कुछ आग्रह और अनुरोधकी आशा रखता था, परन्तु—

शैल—यह क्या रसिक दादा? तुम तो रविवारको व्रत किया करते थे, आज क्या तुम खाओगे?

रसिक—देखते हैं जनाब! नियम और किसीकी बेर नहीं, रसिक दादाकी बेर तैयार है। नहीं, अब तो 'बलं बलं बाहुबलम्' की बात है! आग्रह और अनुरोधका इन्तजार व्यर्थ है!

विपिन—(केवल चार भोजन-पात्र देखकर) आप क्या हमारे साथ तशरीफ़ नहीं रक्खेंगे?

शैल—नहीं, मैं आप लोगोंको भोजन परोसूँगा।

श्रीशने कहा—ऐसा कभी हो सकता है!

शैल—मेरे लिए आप लोगाने अनेक अनियम सहन किए हैं, अब मेरी केवल यही इच्छा आप पूर्ण कीजिए। मुझे परोसने दीजिए, मुझे खानेकी अपेक्षा इसीमें ज्यादा खुशी होगी।

श्रीश—रसिक बाबू, यह क्या उचित हो रहा है?

रसिक—' भिन्नरुचिर्हि लोकः ' । वह परोसना अच्छा समझते हैं और हम भोजन करना। जान पड़ता है, इस प्रकारके रुचिभेदसे पारस्परिक सुविधा ही होती है !

सभी भोजन करने लगे।

शैल—चन्द्र बाबू, वह मीठा है, उसे पहले न खाइए, तरकारी यह है। क्या पानीका गिलास ढूँढ़ रहे हैं ? लीजिए यह है—कहके गिलास आगे बढ़ा दिया।

चन्द्र बाबूको निर्मला याद आ गई ! ऐसा मालूम हुआ जैसे यह बालक निर्मलाका भाई है। आत्मसेवामें अनिपुण चन्द्र बाबूके प्रति शैलके मनमें विशेष रूपसे स्नेहका उद्रेक हो आया। चन्द्र बाबूके पत्तलमें आम था, वह उसे अच्छी तरह आयत्त नहीं कर पाते थे। शैलने चटसे उसे काटकर सहजसाध्य कर दिया। जिस समय जिस चीजकी आवश्यकता हुई, उस समय उसे धीरे धीरे उनके हाथके पास जुटाकर वह उनके भोजन-व्यापारको निर्विघ्न करने लगी।

चन्द्र—श्रीश बाबू, स्त्री-सभ्यको ग्रहण करनेके सम्बन्धमें आपने कुछ विचार किया है ?

श्रीश—अगर सोचा जाय तो उसमें आपत्तिकी कोई बात नहीं है। केवल समाजकी आपत्तिकी बात विचारणीय है।

विपिनकी तर्क-प्रवृत्ति जागरित हो उठी। उसने कहा,—समाजको अनेक समय बच्चेके समान समझना चाहिए। बच्चेकी सभी आपत्तियोंको मानकर चलनेसे उसकी उन्नति नहीं होती। समाजके सम्बन्धमें भी यही कहा जा सकता है।

आज श्रीश उपस्थित प्रस्तावके सम्बधमें कुछ नरम था, अन्यथा उत्तापसे बाष्प और बाष्पसे वृष्टिके समान इस तर्कसे कलह और कल-

इसे फिर सद्भावकी सृष्टि होती। उसने उत्साहके साथ कहा—ऐसा मालूम होता है कि हमारे देशमें जो इतनी सभा-समितियाँ, आयोजन-अनुष्ठान थोड़े ही समयमें असफल हो जाते हैं, सो इसका प्रधान कारण यह है कि उनमें स्त्रियोंका सहयोग नहीं रहता है। क्यों रसिक बाबू, आपकी क्या राय है?

रसिक—यद्यपि स्त्री-जातिके साथ मेरा विशेष सम्बन्ध नहीं है, फिर भी इतना मैं जान गया हूँ कि स्त्री-जाति या तो साथ देती है या बाधा पहुँचाती है; या तो सृष्टि करती है या प्रलय। इस लिये उसे अपने दलमें ले लेनेसे चाहे और कोई सुविधा न हो, पर बाधासे छुटकारा पाया जा सकता है। सोचनेकी बात है, अगर आप लोग चिरकुमार-सभामें स्त्री-जातिको ग्रहण करते, तो इस सभाको नष्ट करनेके लिये स्त्रियाँ उत्साहित न होतीं—पर वर्त्तमान अवस्थामें—

शैल—रसिकदादा, तुम्हें कुमार सभाके प्रति यह स्त्रियोंकी विनाश-कामनाकी खबर कहाँ मिली?

रसिक—विपत्तिकी खबर न मिलनेसे क्या सावधान रहना उचित नहीं है? एक आँखवाला हिरन जिस तरफ़से काना था, उसी तरफ़से उसे तीर लगा था। कुमार-सभा अगर स्त्री-जातिकी ओर ही कानी होगी, तो उसी तरफ़से उसे चोट लगेगी।

श्रीश—(विपिनसे धीमे स्वरमें) एक आँखवाले हिरनको तो आज एक तीर लग चुका है—सचमुच ही आज एक सभ्य चोट खाकर धराशायी हो गया है।

चन्द्र०—केवल पुरुषोंको लेकर जो लोग समाजका हित करना चाहते हैं, वे एक पाँवसे चलना चाहते हैं। इसी लिये कुछ ही दूर जाकर उन्हें

बैठ जाना पड़ता है। समस्त महती चेष्टाओंसे स्त्रियोंको दूर रखनेके कारण ही आज हमारे देशके कार्यमें प्राणोंका सञ्चार नहीं हो रहा है। हमारा हृदय, हमारा कार्य, हमारी आशा बाहर और भीतर खण्डित है। इसी कारण हम लोग बाहर जाकर व्याख्यान देते हैं और घर आकर भूल जाते हैं। देखो, अबलाकान्त बाबू, अभी तुम्हारी अवस्था छोटी है। यह बात कभी न भूलना—स्त्री-जातिके प्रति कभी अवज्ञा प्रकाशित न करना। स्त्रियोंको अगर हम नीचे रक्खेंगे, तो वे भी हमें नीचेकी ओर खींचेंगी। ऐसा होनेसे हम लोग उन्नतिके पथमें चल नहीं सकेंगे—दो क़दम चलकर ही फिर घरके कौनेमें आकर बद्ध हो जायँगे। अगर हम उन्हें ऊपर रक्खेंगे, तो घरके भीतर आकर अपने आदर्शको खर्व करनेमें लज्जा मालूम देगी। हमारे देशमें बाहर इस प्रकारकी लज्जाका अभाव नहीं दिखलाई देता, पर भीतर वह नहीं पाई जाती। इसी कारण हमारी उन्नति बाह्याडम्बरमें परिणत होती है।

शैलने चन्द्र बाबूकी यह बात मस्तक झुकाकर सुनी और कहा—आशीर्वाद दीजिए कि आपका यह उपदेश व्यर्थ न हो, अपनेको हम लोग इस आदर्शके उपयुक्त बना सकें।

अत्यन्त निष्ठा तथा श्रद्धाके साथ उच्चारित इन शब्दोंको सुनकर चन्द्र बाबू कुछ विस्मित हुए। उन्हें अपने सभी उपदेशोंके प्रति निर्मलाकी तर्कविहीन विनम्र श्रद्धाकी बात याद आ गई। स्नेहार्द्र होकर वह फिर यही सोचने लगे कि यह निर्मलाका ही भाई है!

चन्द्र—मेरी भानजी निर्मलाको कुमार-सभामें सभ्य रूपसे सम्मिलित करनेमें आप लोगोंको कोई एतराज़ तो नहीं है?

रसिक—और तो कोई एतराज़ नहीं है, केवल व्याकरणसम्बन्धी

एतराज है। कुमार-सभामें अगर कोई कुमारीवेशमें आवेगा, तो उसपर बोपदेवका* शाप पड़ेगा।

शैल—इस ज़मानेमें बोपदेवका अभिशाप नहीं ठहर सकता।

रसिक—अच्छा, बोपदेव न सही, लोहारामकी बात तो माननी पड़ेगी। मेरी रायमें अगर स्त्री-सभ्य पुरुष-सभ्योंके अनजानमें नाम और वेश बदलकर आवें, तो सहज ही इस झगड़ेका निपटारा हो जाय।

श्रीश—ऐसा होनेसे एक तमाशा यह होगा कि कौन स्त्री है और कौन पुरुष, इस सम्बन्धमें सन्देह बना रहेगा।

विपिन—परन्तु जान पड़ता है कि मैं इस सन्देहसे छुट्टी पा सकता हूँ।

रसिक—मुझे भी मेरी समझमें कोई मेरी पोती नहीं समझेगा!

श्रीश—पर अबलाकान्त बाबूके सम्बन्धमें कुछ सन्देह रह जाता है।

शैलने यह सुनकर पासकी तिपाईसे मिठाईकी थाली लानेके लिये प्रस्थान किया।

चन्द्र—देखिए रसिक बाबू, भाषातत्त्वमें देखा जाता है कि व्यवहार करते करते एक शब्दके मूल अर्थका लोप हो जाता है और उलटा अर्थ घटित हो जाता है। स्त्री-सभ्योंको ग्रहण करनेसे अगर कुमार-सभाका अर्थ बदल जाय तो हर्ज क्या है?

रसिक—कुछ भी नहीं; मैं परिवर्तनका विरोधी नहीं हूँ। नाम-परिवर्तन, वेश-परिवर्तन या अर्थ-परिवर्तन, कुछ भी हो जाय, मैं विना विरोधके उसे ग्रहण कर लेता हूँ, इसीलिये मेरा मन नवीन है।

मिठाई खतम हो चुकी और स्त्री-सभ्योंको दाखिल करनेके सम्बन्धमें किसीकी कोई आपत्ति न रही।

* मुग्धबोध व्याकरणके कर्त्ता।

भोजनके उपरान्त रसिकने कहा--आशा करता हूँ कि सभाके काममें कोई विघ्न उपस्थित नहीं हुआ।

श्रीशने कहा--बिल्कुल नहीं, बल्कि और दिनों केवल मुँहका ही काम चलता था, पर आज उसके साथ दाहिने हाथने भी योग दिया है।

विपिन--इससे आभ्यन्तरिक तृप्ति कुछ अधिक हुई है।

शैलने प्रसन्न होकर अपने स्वाभाविक स्निग्ध-कोमल हास्यसे सबको पुरस्कृत किया।

९

अक्षय--यह क्या हुआ बतलाओ तो! मेरा जो कमरा अब तक झड़ू कहारके झाड़नके ताड़नसे निर्मल रहता था, उसकी हवा अब सुबह-शाम तुम दो बहनोंके अञ्चलके व्यजनसे चञ्चल हो उठी है!

नीर--दीदी नहीं है, तुम अकेले पड़े रहते हो, इसलिये दया करके हम बीच बीचमें आजाया करती हैं, फिर भी हमसे जवाब तलब किया जाता है?

अक्षय--(गाता है)

इतनी दया तुम्हारे मनमें! तुम हो बड़ी दयामय चोर,
कैसे हाय! रही हो डाल गलेमें तुम मायाका डोर!
कैसे दया दिखाकर हाय! चुराती हो मम हृदय विभोर!

नीर--जनाब, अब सैंध लगानेका परिश्रम व्यर्थ है; हमें इतना बेवकूफ़ चोर न समझिए। अब हृदय है ही कहाँ जो हम चोरी करने आवेंगी?

अक्षय—अच्छा ठीक बतलाओ तो, अभागा हृदय गया है कितनी दूर ?

नृप—मैं जानती हूँ जिज्जाजी। बतलाऊँ ? ४७५ मील !

नीर—सँझली दीदी, तुमने तो हद कर दी ! तुम क्या जिज्जाजी-के हृदयके पीछे पीछे मील गिनती हुई दौड़ी थीं ?

नृप—नहीं भाई, दीदीके काशी जाते समय टाइम टेबिलमें मीलोंकी संख्या देखी थी।

अक्षय—(गान)

भागा जाता हृदय, वेगसे
चलती है यह धमनी,
उसे पकड़नेको पीछेसे
दौड़ रही है रमणी !
वायु-वेगसे उड़ता अञ्चल,
वेणी हिलती चञ्चल,
नव उमङ्गसे दौड़ रही है
यह कुरंग-गति-गमनी !

नीर—कविवर, साधु ! साधु ! पर तुम्हारी रचनामें किसी किसी आधुनिक कविकी छाया पाई जाती है।

अक्षय—इसका कारण यह है कि मैं भी अत्यन्त आधुनिक हूँ ! तुम लोग क्या यह समझती हो कि मैं कृत्तिवास* ओझाका यमज+ भाई हूँ ? भूगोलके मीलतक तुम गिन लेती हो, पर इतिहासकी तारीखमें

* बङ्गालके एक कवि। इनका बनाया हुआ रामायण बङ्गालमें प्रसिद्ध है।
+ एक साथ उत्पन्न होनेवाला—जुड़वाँ।

भूल करती हो! विदुषी सालियोंके होनेसे फिर मुझे लाभ ही क्या है? इतने बड़े आधुनिकको तुम लोग प्राचीन समझ बैठी हो!

नीर—जिजाजी, शिवजी जब विवाह-सभामें गए थे, तब उनकी सालियोंको भी यही भ्रम हुआ था। पर उमाकी आँखोंमें वह कुछ और ही जँचे थे! तुम्हें डर किस बातका है! दीदी तो तुम्हें आधुनिक ही समझती हैं।

अक्षय—मूढ़े, शिवजीके अगर सालियाँ होतीं, तो क्या उनका ध्यान भङ्ग करनेके लिये अनङ्गदेवकी आवश्यकता होती? मेर साथ उनकी तुलना?

नृप—अच्छा जिजाजी, अब तक तुम यहाँ बैठे बैठे क्या कर रहे थे?

अक्षय—तुम्हारे ग्वालेके दूधका हिसाब लिखता था!

नीर—(डेस्कके ऊपरसे असमाप्त चिट्ठी उठाकर) क्या यही तुम्हारा ग्वालेका हिसाब है? हिसाबमें तो क्षीर और नवनीत (मक्खन) का अंश ही अधिक है।

अक्षय—(घबराकर) न, न, उसे लेकर दिल्लगी न करो, दे दो—

नृप—नीरू, क्या करती है? तंग मत कर, चिट्ठी उन्हें लौटा दे। उस विषयमें सालीका उपद्रव नहीं सहा जाता। पर जिजाजी, तुम दीदीको चिट्ठीमें किस नामसे सम्बोधित करते हो, बतलाओ तो!

अक्षय—नित्य नए ढङ्गसे—

नृप—आज किस तरहसे किया है, जरा बतलाओ तो सही!

अक्षय—सुनोगी? तब सुनो सखी!—चञ्चलचकितचित्तचकोरचौर-चञ्चुचुम्बितचारुचन्द्रिकरुचिरुचिर चिरचन्द्रमा।

नीरू—वाह चमत्कारपूर्ण चाटु-चातुर्य है!

अक्षय—इसमें चौर्यवृत्ति नहीं है, यह चर्वितचर्वणशून्य है।

नृप—(विस्मयके साथ) अच्छा जिज्जाजी, तुम रोज-रोज क्या इसी तरहके लम्बे लम्बे सम्बोधनोंकी रचना करते हो? इसी लिये शायद दीदीको चिट्ठी लिखनेमें इतनी देरी होती है!

अक्षय—इसी लिये तो नृपके सामने मेरी झूठी बात नहीं चलती! भगवान्ने मुझे जो तुर्त फुर्त्त बनाकर बोलनेकी असाधारण क्षमता दी है, देखता हूँ उसे काममें नहीं लाने दिया! भगिनी-पतिकी बातको वेद-वाक्य समझकर उसपर विश्वास करनेके लिये किस मनु-संहितामें कहा गया है, बतलाओ तो?

नीर—क्रोध न करो, शान्त होओ, शान्त! सँझली दीदीकी बात छोड़ दो। पर जरा सोचकर देखो, मैं तुम्हारी जरासी बात पर भी रत्ती भर विश्वास नहीं करती, इससे भी तुम्हें तसल्ली नहीं है?

नृप—अच्छा जिज्जाजी, सच कहो, कभी तुमने दीदीके नामपर कोई कविता की है?

अक्षय—अबकी जब वह बहुत क्रोधित हुई थीं, तब मैंने उनकी स्तुति रची थी—

नृप—उसके बाद?

अक्षय—उसके बाद जब मैंने देखा कि फल उलटा हुआ है, हवाके वेगसे आग भड़क उठी है, तबसे स्तुति-रचना ही छोड़ दी।

नृप—छोड़कर अब सिर्फ़ ग्वालेका हिसाब लिखते हो! कैसी स्तुति रची थी, जरा हमें भी तो सुनाओ।

अक्षय—साहस नहीं होता, कहीं तुमने मेरे ऊपरके हाकिमके पास रपट कर दी तो?

नृप—नहीं, हम दीदीसे नहीं कहेंगी।

अक्षय—तब सुनो!—

मनोमन्दिर सुन्दरी!
स्खलदञ्चला चल-चञ्चला
अयि मञ्जुला मञ्जरी!
रोषारुणरागरञ्जिता!
गोपनहास्य-कुटिल लास्य
कपट-कलह-गञ्जिता!
सङ्कोचनत-अङ्गिनी!
चकितचपल नवकुरङ्ग
यौवनवनरङ्गिनी!
अयि खल, छलगुण्ठिता!
लुब्ध-पवन-क्षुब्ध लोभन
मल्लिका अवलुण्ठिता!
चुम्बन-धन-वञ्चिनी!
रुद्ध-कोरक-सञ्चित-मधु
कठिन-कनक-कञ्जिनी!

बस, अब आगे नहीं। अब दोनों श्रीमतीजी बिदा होवें!

नीर—क्यों, इतना अपमान क्यों? दीदीकी घुड़कियाँ सुनकर अब शायद उसका बदला हमसे चुकानेकी इच्छा है?

अक्षय—तुम लोग क्या जनाना कमरा पवित्र नहीं रहने दोगी? अरी दुर्वृत्ते! अभी लोग आ पहुँचेंगे!

नृप—साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते कि दीदीके लिये चिट्ठी ख़तम करनी होगी?

नीर—तो हमारे यहाँ रहनेसे क्या विघ्न पहुँचता है? तुम लिखते क्यों नहीं हो? हम क्या तुम्हारी क़लमके मुँहसे बात छीन लेंगी?

अक्षय—तुम्हारे यहाँ रहनेसे मन तो यही मर मिटता है; जो दूर पड़ी हैं, उनके पास तो पहुँचने ही नहीं पाता ! नहीं, हँसी नहीं, भाग जाओ ! अभी लोग आ पहुँचेंगे—यह एक ही तो दरवाजा है, फिर भागनेका रास्ता नहीं मिलेगा ।

नृप—शाम हो गई है, इस वक्त कौन तुम्हारे पास आवेगा ?

अक्षय—जिनका ध्यान करती हो, वे नहीं आवेंगे ! क्यों घबराती हो !

नीर—जिसका ध्यान किया जाता है, वह सभी समय नहीं आता, यह बात आजकल तुम खूब अच्छी तरह समझ रहे हो, क्यों ? देवताका ध्यान करके उपदेवताके उपद्रवसे डरते हो !

" अबलाकान्त बाबू क्या भीतर हैं ? " यह कहता हुआ कमरेके भीतर अकस्मात् श्रीश प्रवेश करता है । और " माफ़ कीजिएगा " कहकर पलायनोद्यत होता है । नृप और नीर शीघ्रतासे चली जाती हैं।

अक्षय—आओ, आओ, श्रीश बाबू !

श्रीश—(लज्जित होकर) माफ़ कीजिएगा ।

अक्षय—इसके लिये राज़ी हूँ, पर अपराध क्या है, पहले यह बतलाओ ।

श्रीश—खबर दिए बिना ही—

अक्षय—तुम्हारी अभ्यर्थनाके लिये जब म्युनिसिपैल्टिीके पाससे बजेट मंजूर नहीं कराना पड़ता है, तब बिना खबर दिए आनेमें हर्ज ही क्या है, श्रीश बाबू ?

श्रीश—आप अगर यही कह दें कि मैंने यहाँ असमयमें अनधिकार-प्रवेश नहीं किया, तो फ़ैसला हो जाता है ।

अक्षय—अच्छा यही सही ! तुम जब आओगे तभी सुसमय है और जहाँ पदार्पण करोगे वहीं तुम्हारा अधिकार है । श्रीश बाबू, स्वयं

विधाताने तुम्हें सभी ठौरके लिये पासपोर्ट दे रक्खा है। जरा ठहरो, मैं अभी अबलाकान्त बाबूको भेजे देता हूँ! (मनमें) यहाँसे भागे बिना चिट्ठी खतम न कर सकूँगा! (प्रस्थान)

श्रीश—आँखोंके सामनेसे युगल माया-स्वर्णमृगी दौड़कर भाग गई अरे निरस्त्र व्याध, तुझमें दौड़नेकी शक्ति नहीं है! निकष (कसौटी) के ऊपर सोनेकी रेखाके समान चकित नेत्रोंकी चितवन दृष्टिपथके ऊपर अङ्कित रह गई!

रसिकका प्रवेश।

श्रीश—रसिक बाबू, मैंने सन्ध्याके समय आकर आप लोगोंको कष्ट तो नहीं पहुँचाया?

रसिक—भिक्षु-कक्षे विनिक्षिप्तः किमिक्षुर्नीरसो भवेत्? श्रीश बाबू आपको देखकर मुझे कष्ट होगा, मैं क्या इतना अभागा हूँ?

श्रीश—अबलाकान्त बाबू क्या घरपर हैं?

रसिक—हैं क्यों नहीं! अभी आते ही होंगे।

श्रीश—नहीं, नहीं, अगर किसी काममें लगे हों, तो बाधा डालनेसे कोई फ़ायदा नहीं! मैं तो आलसी आदमी हूँ, बेकार आदमियोंकी खोजमें घूमा करता हूँ।

रसिक—संसारमें श्रेष्ठ लोग ही आलसी होते हैं और बेकार लोग ही धन्य हैं। दोनोंका सम्मिलन होनेसे ही मणि-काञ्चनका संयोग होता है। आलसी और बेकारोंके मिलनके लिये ही सन्ध्याकालकी सृष्टि हुई है। योगी लोगोंके लिये प्रातःकाल, रोगी लोगोंके लिये रात्रिकाल, और कामकाजी लोगोंके लिये दस बजेसे चार बजे तकका काल है। और सन्ध्याकाल? सच कहता हूँ, चतुर्मुख ब्रह्माने चिरकुमार-सभाके अधि-

वेशनके लिये सन्ध्याकाल नहीं रचा है ! आपका क्या ख्याल है, श्रीश बाबू !

श्रीश—यह बात मुझे माननी पड़ेगी; क्यों कि सन्ध्या कुमारसभाके बहुत पहलेसे ही रची गई है, वह हमारे सभापति चन्द्र बाबूका नियम नहीं मानती—

रसिक—वह जिस चन्द्रका नियम मातनी है, उसका नियम ही दूसरा है। आपसे स्पष्ट बात कहता हूँ, आप हँसिएगा नहीं—मेरे पहले मञ्जिलवाले कमरेमें बड़ी मुश्किलसे एक खिड़कीसे होकर कुछ चाँदनी आ जाती है—शुक्ल सन्ध्याकी उस चाँदनीकी शुभ्र रेखा जब मेरी छातीसे लग जाती है, तब ऐसा माल्रम देता है जैसे किसीने मेरे पास न जाने क्या संदेशा भेजा है ! जैसे एक शुभ्र हंसदूत किसी विरहिणीकी तरफ़से इस चिर-विरहीके कानमें कह रहा है—

अलिन्दे कालिन्दीकमलसुरभौ कुञ्जवसतेः
वसन्तीं वासन्तीनवपरिमलोद्गारचिकुराम् ।
त्वदुत्सङ्गे लीनां मदमुकुलिताक्षीं पुनरिमाम्
कदाहं सेविष्ये किसलयकलापव्यजनिनी ।

श्रीश—वाह वाह रसिक बाबू, कमाल है ! पर इसके माने बतलाने पड़ेंगे। छन्दके भीतर उसके रसकी गन्ध पाई जा रही है, पर अनुस्वार-विसर्गसे वह बिल्कुल कसकर बन्द की गई है।

रसिक—मैंने इसका उल्था किया है—कहीं सम्पादक लोग खबर पाकर झपट न पड़ें, इसलिये मैंने उसे छिपा रक्खा है। अच्छा सुनिए—

नव-निकुञ्ज-गृहके अलिन्दके ऊपर
कालिन्दी-कल-कमल-सुगन्धि बहेगी,
नव-वसन्त-परिमल-युत कुन्तल लेकर
बाला तव जङ्घामें लीन रहेगी ।

पत्र-पङ्खसे कब उसको कर वीजन—
मुझे तृप्ति होगी ? कब हुलसेगा मन ?

श्रीश—वाह-वाह रसिक बाबू, आपमें इतनी कवित्व शक्ति है यह तो मुझे मालूम ही नहीं था !

रसिक—कैसे मालूम होता ! काव्यलक्ष्मी कभी कभी अपने पद्म-वनसे इस गञ्जी खोपड़ीके ऊपर मुक्तवायुमें विचरनेके लिये आती हैं, इस सम्बन्धमें किसीको कभी सन्देह भी नहीं होता है ! (हाथ फेरकर) पर ऐसी खुली जगह और कहीं नहीं है !

श्रीश—अहाहा रसिक बाबू, यमुना-तीरके उस सुन्दर अलिन्दवाले निकुञ्ज-गृहमें मेरा मन रम गया है। अगर पायोनियरमें कभी विज्ञापन छपे कि उसका नीलाम हो रहा है, तो ख़रीद लूँ !

रसिक—श्रीश बाबू, केवल अलिन्द लेकर क्या कीजिएगा ? उस मदमुकुलिताक्षीकी बातका तो ख्याल कीजिए। उसे नीलाममें पाना मुश्किल है।

श्रीश—यह किसका रूमाल पड़ा है !

रसिक—देखूँ, जरा दिखलाइए तो ! वाह, कैसा दुर्लभ पदार्थ आपके हाथ लगा है ! कैसी अच्छी खुशबू उड़ रही है ! श्लोकको पंक्ति बदलनी होगी साहब, छन्दोभङ्ग होता हो तो होवे—"वासन्तीनवपरिमलोद्गाररूमालाम्" ! श्रीश बाबू, इस रूमालसे तो हमारी कुमार-सभाकी पताका निर्मित नहीं हो सकेगी। देखिए न, कौनेमें एक छोटासा 'न' अक्षर लिखा है।

श्रीश—क्या नाम हो सकता है, बतलाइए ? नलिनी ? नहीं, यह बहुत प्रचलित नाम है। नीलाम्बुजा ? बहुत मोटा है। नीहारिका ?

बहुत बड़ा है। बतलाइए न रसिक बाबू, आपके विचारमें क्या हो सकता है?

रसिक—नाम मेरे विचारमें नहीं आता, पर भाव आता है। शब्द-कोषमें जितने 'न' हैं, सब मेरे सिरके भीतर जमा होते जाते हैं, 'न' की माला गूँथकर किसी नीलोत्पलनयनाके गलेमें पहनानेको जी करता है—निर्मलनवनीनिन्दित नवीन—चलिए न श्रीश बाबू, पूरा कीजिए न—

श्रीश—नवमल्लिका।

रसिक—ठीक है—निर्मलनवनीनिन्दित नवीन नवमल्लिका! गीत-गोविन्द मिट्टी हो गया! और भी अनेक अच्छे अच्छे 'न' सिरके भीतर हाहाकार मचा रहे हैं, पर उन्हें मिला नहीं सकता हूँ—निभृत निकुञ्ज-निलय, निपुणनूपुरनिक्कण, निविड़ नीरद-निर्मुक्त—अक्षय भैया होते तो सोचना न पड़ता! मास्टर साहबको देखते ही जिस प्रकार लड़के बेञ्चपर अपने अपने स्थानपर क़तार बाँधकर बैठ जाते हैं, उसी प्रकार अक्षय भैयाको देखते ही शब्द दौड़ते हुए आकर एक दूसरेके साथ जुड़ जाते हैं। श्रीश बाबू, बूढ़े आदमीको ठगकर रूमाल चुप-केसे जेबमें न डालिएगा—

श्रीश—आविष्कार-कर्त्ताका अधिकार ही सबके ऊपर—

रसिक—मुझे इस रूमालकी आवश्यकता है, श्रीश बाबू! आपसे मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मेरे निर्जन कक्षके एकमात्र झरोखेसे थोड़ीसी चाँदनी भीतर आती है—मुझे एक कविता याद आती है—

वीथीषु वीथीषु विलासिनीनां
मुखानि संवीक्ष्य शुचिस्मितानि,
जालेषु जालेषु करं प्रसार्य
लावण्यभिक्षामटतीव चन्द्रः।

चन्द्र विलासिनीयोंकी गलियोंमें उनके हँसमुख देखता हुआ और प्रत्येक झरोखेमें अपने कर प्रसारित करता हुआ मानो लावण्यकी भिक्षा माँगता फिरता है।

हतभाग्य भिक्षुक जब मेरे झरोखेमें आता है तब उसे क्या देकर भुलाऊँ, बतलाइए तो? काव्यशास्त्रकी रसभरी बातें जो-कुछ भी याद आती हैं उन सबकी आवृत्ति कर जाया करता हूँ; परन्तु मीठी बातोंसे पेट नहीं भरता। उस दुर्भिक्षके समय यह रूमाल बड़ा काम देगा। इसमें लावण्यका बहुत कुछ संसर्ग है।

श्रीश—रसिक बाबू, वह लावण्य क्या आपने कभी देखा है?

रसिक—जरूर देखा है! नहीं तो क्या इस रूमालके लिये इतना झगड़ता? और जो यह 'न' अक्षरके शब्द मेरे सिरके भीतर भ्रमराव-लीकी तरह गुञ्जन कर रहे हैं, उनके सामने क्या एक कमलवनविहा-रिणी मानसीमूर्ति नहीं है?

श्रीश—रसिक बाबू, आपका यह मगज क्या है, एक मधु-चक्र है। इसके छिद्र-छिद्रमें कवित्वका मधु भरा है। देखता हूँ, मुझे यह रस मतवाला बना देगा। (दीर्घनिःश्वास मोचन)

पुरुषवेशी शैलबालाका प्रवेश।

शैल—मुझे आनेमें बड़ी देर हो गई है, माफ़ कीजिए श्रीश बाबू।

श्रीश—मैं भी शामके वक्त ऊधम मचाने आगया हूँ, मुझे भी माफ़ कीजिए अबलाकान्त बाबू!

शैल—अगर आप हररोज शामको इसी प्रकार ऊधम मचाने आया करें, तो माफ़ कर दूँगा, नहीं तो नहीं।

श्रीश—अच्छा, मैं राजी हूँ। पर इसके बाद यदि कभी आपको पछतावा हो, तो यह प्रतिज्ञा याद रखिएगा।

शैल—मेरे लिये चिन्ता न कीजिए, पर यदि कभी आपको पछतावा होगा, तो आपको छुट्टी मिल जायगी।

श्रीश—इस भरोसे अगर आप रहेंगे, तो अनन्तकाल तक ठहरे रहना होगा।

शैल—रसिक दादा, तुम श्रीश बाबूकी जेबकी ओर हाथ क्यों बढ़ा रहे हो? वृद्धावस्थामें गिरहकट बनना चाहते हो?

रसिक—नहीं, यह पेशा तुम लोगोंकी अवस्थामें ही शोभा देता है। एक रूमालके लिये श्रीश बाबूके साथ मेरा झगड़ा चल रहा है, तुम्हें उसका फैसला कर देना होगा।

शैल—कैसा?

रसिक—प्रेमके बाजारमें बड़ा व्यापार करनेके लायक पूँजी मेरे पास नहीं है—मैं फुटकर मालका कारबार करता हूँ—रूमाल, बालोंकी डोरियाँ, फटे हुए कागजोंमें हाथके लिखे हुए दो चार अक्षर, इन सब चीजोंको इकट्ठा करके ही मुझे सन्तुष्ट रहना पड़ता है। श्रीश बाबूके पास जितना मूलधन है उससे वह सारे बाजारको भी थोक भावसे खरीद सकते हैं—रूमाल ही नहीं, समस्त नीलाञ्चलके आधे भागपर अपना अधिकार जमा सकते हैं; हमें जब बालोंकी डोरीसे गलेमें फाँसी लगाकर मरनेकी इच्छा होती है, तब वह आगुम्फविलम्बित चिकुरराशिके सुगन्धियुत घनान्धकारमें पूर्णतया अस्त होकर छिप सकते हैं। ऐसी दशामें वह उञ्छवृत्ति* करने क्यों आयँगे?

* सिला बीनना। खेतोंमें कटनीके बाद जो अनाजकी बालें पड़ी रह जाती हैं उन्हें चुनकर जो जीविका की जाती है उसे उञ्छवृत्ति कहते हैं।

श्रीश—अबलाकान्त बाबू, आप तो निष्पक्ष व्यक्ति हैं, रूमाल इस समय आप अपने ही हाथमें रखिए और दोनों पक्षके बयान समाप्त हो जाने पर जिसे इसका अधिकारी समझें उसीको दे दीजिएगा।

शैल—(रूमालको जेबमें डालकर) क्या आप मुझे निष्पक्ष आदमी समझते हैं? इसके एक कौनेमें जिस प्रकार 'न' अक्षर लाल तागेसे लिखा गया है, उसी प्रकार यदि मेरे हृदयके एक कौनेमें खोजेंगे, तो आप देखेंगे कि वही अक्षर रक्तके रंगसे लिखा हुआ है। यह रूमाल मैं आप लोगोंमेंसे किसीको नहीं दूँगा।

श्रीश—रसिक बाबू, यह कैसी जबर्दस्ती है? और 'न' अक्षर भी तो बड़ा भयङ्कर अक्षर है!

रसिक—सुना है, विलायती शास्त्रमें न्यायधर्म भी अन्धा है और प्रेम भी अन्धा है। अब दो अन्धोंमें लड़ाई छिड़ जानी चाहिए। जिसमें अधिक बल होगा उसीकी जीत होगी।

शैल—श्रीश बाबू, जिसका यह रूमाल है, उसे तो आपने देखा ही नहीं है, तब क्यों केवल कल्पनाके ऊपर निर्भर करके झगड़ रहे हैं?

श्रीश—कौन कहता है कि नहीं देखा है?

शैल—देखा है? किसे देखा है? 'न' तो दो हैं—

श्रीश—दोनोंको ही देखा है। यह रूमाल दोनोंमेंसे किसीका भी हो, मैं अपना अधिकार नहीं छोड़ सकूँगा।

रसिक—श्रीश बाबू, बूढ़ेका परामर्श सुनिए।—हृदय-गगनमें दो चन्द्रोंको स्थापित न कीजिएगा,—एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति।

नौकरका प्रवेश।

नौकर—(श्रीशसे) चन्द्रबाबूकी चिट्ठी लेकर एक आदमी आपको मकानपर ढूँढ़कर आखिर यहाँ आ पहुँचा है।

श्रीश—(चिट्ठी पढ़कर) आप लोग जरा ठहरे रहिएगा ! चन्द्र बाबूका मकान पास ही है—मैं लपककर उनके पास हो आता हूँ।

शैल—भागेंगे तो नहीं ?

श्रीश—नहीं, मैं अपना रूमाल आपके पास बन्धक रख जाता हूँ। उसको छुड़ाए बिना नहीं जा सकता। (प्रस्थान)

रसिक—शैल, कुमार-सभाके सभ्योंको मैं जिस प्रकारका भयङ्कर कुमार समझे था, वे वैसे बिल्कुल नहीं हैं। इनकी तपस्या भङ्ग करनेके लिये मेनका, रम्भा, मदन, वसन्त, आदि किसीकी भी जरूरत नहीं होगी, यह बूढ़ा रसिक ही इनके लिए काफ़ी है।

शैल—यही तो मैं भी देखती हूँ।

रसिक—असली बात क्या है, जानती हो ? जो लोग दार्जिलिङ्गमें रहते हैं, वे ज्यों ही मैलेरियाके देशमें पैर रखते हैं कि उन्हें रोग घर दबाता है। ये लोग भी आज तक चन्द्र बाबूके मकानमें बड़े नीरोग स्थानमें थे, पर यह मकान तो रोगके बीजोंसे भरा हुआ है। यहाँके रूमालोंमें, किताबोंमें कुर्सियोंमें, मेजोंमें, सर्वत्र ही रोगाणु भरे हैं। जहाँ कहीं भी ये स्पर्श करते हैं कि वहींसे नाकमें, मुँहमें रोग घुस जाता है। अहा, बेचारा श्रीश बाबू गया !

शैल—और रसिक दादा, तुम्हें शायद रोगके बीजोंका अभ्यास हो गया है !

रसिक—मेरी बात रहने दो। मुझे प्लीहा, यकृत आदि जो कुछ होना था, सब हो चुका है।

नीरबालाका प्रवेश।

नीर—दीदी, हम बग़लवाले कमरेमें ही थीं।

रसिक—मछुए जाल खींचते खींचते तङ्ग आ गए हैं, और चील्ह बैठी है, झपटनेकी ताकमें!

नीर—सँझली दीदीके रूमालको लेकर श्रीश बाबूने कैसा तमाशा किया! सँझली दीदी तो लाजके मारे मुँह लाल करके भाग गई हैं। मैं इतनी बेवकूफ हूँ कि भूलकर भी यहाँ कुछ न छोड़ गई। बारह रूमाल ले आई हूँ। सोच रही हूँ, अबकी कमरेमें रूमालोंकी लूट मचा दूँगी।

शैल—तेरे हाथमें यह क्या किताब है नीर?

नीर—जो गीत मुझे आते हैं, उन्हें इसमें लिख लेती हूँ।

रसिक—अच्छा आजकल तुझे कैसे पारमार्थिक गीत पसन्द हैं, जरा उनका कोई नमूना तो सुना।

नीर—

बीत चला है दिन, उस पार खड़ी है नैया,
लेने-देनेका हिसाब कर लो अब भैया!

रसिक—तुम्हें तो बड़ी जल्दी पड़ी है! पार करनेकी नैया अभी बुलाए देता हूँ दीदी। जो कुछ देना हो और जो कुछ लेना हो, सब मुकाबिलेमें ठीक कर लेना।

"अबलाकान्त बाबू हैं?" कहके विपिन कमरेमें आकर चकित होकर खड़ा रह जाता है। नीरबाला क्षणकाल तक हतबुद्धि होकर जल्दीसे बाहर निकल जाती है।

शैल—आइए विपिन बाबू।

विपिन—ठीक कहिए, मैं आऊँ या नहीं? मेरे आनेसे आप लोगोंका कुछ नुकसान तो न होगा?

रसिक—जब तक घरका कुछ नुक़सान नहीं किया जाता है तब तक लाभ नहीं होता है, विपिन बाबू, यह व्यापारका नियम है। जितना जाता है, उसका दूना वापस आ सकता है। क्यों अबलाकान्त?

शैल—रसिक दादाकी रसिकता आजकल कुछ कड़ी होती जाती है।

रसिक—जिस प्रकार गुड़ जमकर कड़ा हो आता है। पर विपिन बाबू, आप क्या सोच रहे हैं, बतलाइए न?

विपिन—सोचता हूँ कि किस बहानेसे बिदा होने पर मुझे बिदा करनेमें आप लोगोंके सौजन्यमें फ़रक़ नहीं पड़ेगा।

शैल—और मित्रतामें अगर फ़रक़ पड़े तो?

विपिन—तो बहाना ढूँढ़नेकी कोई जरूरत ही न होगी।

शैल—तब आप बहाना ढूँढ़नेकी चिन्ता छोड़कर अच्छी तरह बैठिए।

रसिक—प्रसन्नचित्त होकर बैठिए विपिन बाबू, हमें देखकर ईर्षा न कीजिए। मैं तो वृद्ध हूँ, युवककी ईर्षाके योग्य ही नहीं हूँ। और हमारे सुकुमार-मूर्ति अबलाकान्त बाबूको कोई स्त्री पुरुष समझ ही नहीं सकती है। आपको देखकर अगर कोई सुन्दरी किशोरी त्रस्त हरिणीके समान भाग जाय, तो मनको यह कहकर समझाइए कि उसने आपको पुरुष समझकर ही इतना आदर दर्शाया है। हायरे हतभाग्य रसिक! मुझे देखकर कोई तरुणी लज्जाके कारण भागती भी नहीं!

विपिन—रसिक बाबू आपको भी इस दलमें घसीट रहे हैं अबलाकान्त बाबू, यह क्या बात है?

शैल—क्या मालूम विपिन बाबू! असल बात यह है कि मेरा यह अबलाकान्त नाम ही झूठा है—किसी भी अबलाने अब तक मुझे 'कान्त'के रूपमें ग्रहण नहीं किया है।

विपिन—हताश न होइए—अभी समय है।

शैल—ऐसी आशा और ऐसा समय होता तो चिरकुमार-सभामें नाम *लिखाने न आता !*

विपिन—(आप-ही-आप) इनके मनके भीतर न जाने एक क्या वेदना भरी है। नहीं तो इतनी छोटी उम्रमें इस कोमल मुखमें ऐसा स्निग्ध और करुणा भाव कभी न रहता। यह किताब काहेकी है? इसमें तो गीत लिखे हैं।—नीरबाला देवी! (पढ़ता है)

शैल—विपिन बाबू, आप क्या पढ़ रहे हैं?

विपिन—किसी एक अपरिचिताके प्रति अपराध कर रहा हूँ। सम्भव है, उनके निकट क्षमा-प्रार्थना करनेका अवसर ही न प्राप्त हो और सम्भव है उनके हाथसे दण्ड पानेका भी सौभाग्य नहीं मिले; पर कुछ भी हो, ये गीत माणिक हैं और हाथके अक्षर मोती! अगर लालचमें पड़कर चोरी करूँ तो दण्डदाता विधाता क्षमा करेंगे!

शैल—विधाता माफ़ कर सकेंगे, पर मै नहीं करूँगा। इस किताबके ऊपर मुझे बहुत लोभ हो रहा है विपिन बाबू।

रसिक—और मैं क्या लोभ-मोह सब जीतकर बैठा हूँ? अहा, हाथके अक्षरोंके समान क्या कोई और चीज़ भी है! मनके भाव मूर्तिमान होकर उँगलियोंके सिरेसे निकल पड़ते हैं—अक्षरोंके ऊपर नजर फेरनेसे हृदय मानों आँखोंसे आकर लग जाता है! अबलाकान्त, इस किताबको छोड़ना मत! तुम लोगोंकी चञ्चला नीरबाला देवी कौतुकके झरनेकी तरह दिन-रात झरी पड़ती हैं। उन्हें तो पकड़कर रखा नहीं जा सकता है; पर इस किताबके पत्रपुट (दौने) में उन्हींका एक घूँट भरा हुआ है—इस चीजका बड़ा दाम है! विपिन बाबू, आप तो नीरबालाको जानते नहीं, आप इस किताबको लेकर क्या करेंगे!

विपिन—आप जब स्वयं उनको जानते हैं तब उनकी इस किताबको लेकर क्या करेंगे ? इस किताबसे मैं जो थोड़ेसे परिचयकी प्रत्याशा करता हूँ, उसके प्रति आप लोगोंकी इतनी कड़ी नजर क्यों है ?

श्रीशका प्रवेश ।

श्रीश—याद आ गया है, साहब—उस दिन यहाँ एक किताबमें नाम लिखे देखे थे—नृपबाला, नीरबाला—यह क्या विपिन, तुम यहाँ कैसे ?

विपिन—तुम्हारे सम्बन्धमें भी ठीक यही प्रश्न किया जा सकता है ।

श्रीश—मैं आया था उस सन्यास-सम्प्रदायवाली बातकी आलोचना अवलाकान्त बाबूके साथ करनेके लिये । उनका चेहरा, कण्ठस्वर, मुँहका भाव देखकर यही जान पड़ता है कि वह हमारे सन्यासी-सम्प्रदायके आदर्श बन सकते हैं । वह अगर अपने चन्द्रकलाके समान कपालमें चन्दन लगाकर, गलेमें माला पहनकर, और हाथमें एक वीणा लेकर प्रातःकाल किसी देहातकी तरफ़ निकल जायँ, तो किस गृहस्थका हृदय पिघलानेमें समर्थ न होंगे ?

रसिक—माफ़ कीजिए, मैं यह नहीं समझ सका कि हृदय पिघलानेकी इतनी बड़ी आवश्यकता क्या है !

श्रीश—चिरकुमार-सभा हृदय पिघलानेकी सभा है ।

रसिक—आप कहते क्या हैं ? तब मुझसे क्या काम बन सकता है ?

श्रीश—आपके भीतर जिस प्रकारका उत्ताप है, उससे तो आप उत्तर मेरुमें जाकर वहाँका बरफ़ पिघलाकर बाढ़ पैदा कर सकते हैं । विपिन, क्यों जा रहे हो ?

विपिन—हाँ, जाता हूँ, मुझे रातको कुछ पढ़ना है।

रसिक—(अलगसे) अबलाकान्त पूछते हैं कि पढ़ चुकने पर किताब वापस कीजिएगा या नहीं?

विपिन—(अलगसे) पढ़ चुकने पर देखा जायगा।

शैल—(चुपकेसे) श्रीश बाबू, आप इधर-उधर क्या ताकते हैं, आपकी कोई चीज खोई तो नहीं गई?

श्रीश—(चुपकेसे) आज रहने दीजिए, किसी दूसरे दिन ढूँढ़ लूँगा। (दोनोंका प्रस्थान।)

नीरबाला—(शीघ्रतासे प्रवेश करके) यह कैसी डकैती है दीदी! मेरी गीतोंकी किताब ले गये? मुझे बड़ा गुस्सा आता है।

शैल—ऐसा अमूल्य धन तू छोड़ क्यों गई थी?

नीर—मैं क्या अपनी इच्छासे छोड़ गई थी?

रसिक—लोग तो इसी प्रकारका सन्देह कर रहे हैं!

नीर—नहीं रसिक दादा, तुम्हारी यह दिल्लगी मुझे अच्छी नहीं लगती।

रसिक—तब तो बड़ी भयानक अवस्था मालूम देती है!

(नीरका सक्रोध प्रस्थान।)

सलज्जा नृपबालाका प्रवेश।

रसिक—क्यों नृप, खोया हुआ धन ढूँढ़ती है क्या?

नृप—नहीं, मेरी तो कोई चीज नहीं खोई गई!

रसिक—यह तो बड़ी खुशखबरी है। शैल, जब रूमालका मालिक ही लापता है, तब जिस आदमीने उसे पाया है उसीको लौटा दे। (शैलके हाथसे रूमाल लेकर) यह चीज किसकी है?

नृप—यह मेरा नहीं है ! (भागना चाहती है ।)

रसिक—(नृपको पकड़कर) जो चीज खोई गई है, नृप उसपर अपना कोई अधिकार भी नहीं रखना चाहती है ।

नृप—रसिक दादा, छोड़ो, मुझे काम है ।

१०

रास्तेमें आकर श्रीशने कहा—विपिन, आज माघके समाप्त होनेपर नव-वसन्तकी हवा बहने लगी है, और चाँदनी भी छिटक रही है । आज अगर अभीसे सोने या सबक याद करनेकी फिक्र की जायगी, तो देवता धिक्कार देंगे ।

विपिन—उनका धिक्कार सहजमें सहा जाता है, पर बीमारीका धक्का या—

श्रीश—देखो, इसीलिये तुम्हारे साथ मेरा झगड़ा होता है । मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि दक्षिण पवनसे तुम्हारा मन भी चञ्चल होता है, पर पीछे कोई तुम्हें कवित्वका अपवाद दे, इस भयसे तुम मलय-समीरको बिलकुल प्रश्रय नहीं देना चाहते । इसमें तुम्हारी क्या बहादुरी है, जरा बतलाओ तो सही ? मैं आज तुम्हारे निकट मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता हूँ कि मुझे फूल भाते हैं, चाँदनी प्यारी लगती है और मलय-पवन भी मेरे प्राणोंको रिझाती है—

विपिन—और !

श्रीश—और जो जो चीजें अच्छी लगने योग्य हैं, वे सभी मुझे भाती हैं

विपिन—तब तो विधाताने तुम्हें बड़े आश्चर्यजनक ढाँचेमें ढाला है ।

श्रीश—तुम्हारा ढाँचा और भी आश्चर्यजनक है। तुम्हें चीज़ तो प्यारी लगती है, पर तुम कहते हो बिलकुल दूसरी बात—मेरे सोनेके कमरेकी घड़ीकी तरह—जो चलती ठीक है, पर बजती है गलत।

विपिन—पर श्रीश, तुम्हें अगर सभी मनोरम पदार्थ मनोहर लगने लगेंगे, तब तो बड़ी आफ़त होगी।

श्रीश—मुझे तो कोई आफ़त नहीं दिखलाई देती।

विपिन—यही लक्षण तो सबसे बुरा है। जब रोगकी पीड़ाका बोध—वेदनाबोध नहीं रहता है, तब उसकी चिकित्साका कोई उपाय नहीं रहता। मैं तो भाई स्पष्ट ही स्वीकार करता हूँ कि स्त्री-जातिमें एक आकर्षण है—चिरकुमार-सभा अगर उस आकर्षणसे बचना चाहती है, तो उसे काफ़ी दूर रहना होगा।

श्रीश—भूल, भूल, भयानक भूल है! तुम्हारे दूर रहनेसे क्या होगा, स्त्रियाँ तो दूर नहीं रहतीं! संसारकी रक्षाके लिये विधाताको इतनी स्त्रियोंकी रचना करनी पड़ी है कि उनसे बचकर चलना असम्भव है। इसलिये अगर कौमार्य-रक्षा चाहते हो, तो तुम्हें धीरे-धीरे स्त्रियोंका अस्तित्व सहन करना पड़ेगा। स्त्री-सभ्योंको ग्रहण करनेके नियमसे कुमार-सभाने इतने दिनोंके बाद स्थायी रहनेका उपाय ग्रहण किया है। पर केवल एक महिलासे काम नहीं चलेगा, और भी स्त्री-सभ्य चाहिए। बन्द कमरेकी एक खिड़की खोल देनेसे सर्दीका डर रहता है, पर खुली हवामें रहनेसे वह भय नहीं रहता।

विपिन—मैं तुम्हारी यह खुली हवा और बन्द हवाकी बात नहीं समझ पाता। जिसकी प्रकृति ही सर्द है, उसे देवता या मनुष्य, कोई भी सर्दीसे नहीं बचा सकता।

श्रीश—तुम्हारी प्रकृति कैसी है ?

विपिन—इस बातको खुलासा करके कह देनेसे ही तुम जान जाओगे कि तुम्हारी प्रकृतिके साथ उसका बड़ा सादृश्य है। मेरी नाड़ी सब समय ठीक चिरकुमार-सभाकी नाड़ीकी तरह चलती है, मैं यह बात दम्भके साथ नहीं कह सकता।

श्रीश—यह तुम्हारी एक और भूल है। चिरकुमार-सभाकी नाड़ीके ऊपर मुक्त वायुका नृत्य होने दो। डरकी कोई बात नहीं है। उसे दबानेकी चेष्टा न करो। हम लोगोंके समान जिनका व्रत है, वे क्या हृदयको रुईसे लपेटकर रख सकते हैं ? उसे अश्वमेध यज्ञके घोड़ेकी तरह छोड़ दो, और जो उसे बाँधे, उसके साथ लड़ाई ठान दो।

विपिन—अरे वह कौन है ? पूर्ण जान पड़ता है। उस बेचारेका तो अब इस गलीसे निकलना कठिन है। इस वीर पुरुषके अश्वमेधका घोड़ा बेढब लँगड़ाता है। क्या उसे पुकारूँ ?

श्रीश—पुकारो। पर वह हमीं लोगोंको गलीगलीमें खोजता हुआ घूम रहा है, ऐसा नहीं मालूम होता।

विपिन—पूर्ण बाबू, क्या ख़बर है ?

पूर्ण—बड़ी पुरानी। कल-परसों जो ख़बर थी, वही आज भी है।

श्रीश—कल-परसों जाड़ेकी हवा चल रही थी, आज वसन्तकी हवा बहने लगी है—इस बीचमें दो एक नई ख़बरोंकी आशा की जा सकती है।

पूर्ण—वसन्तकी हवासे जिन सब ख़बरोंकी सृष्टि होती है, कुमार-सभाके अख़बारमें उनके लिये स्थान नहीं रहता। तपोवनमें एक दिन असमयमें वसन्तकी हवा बही थी, उसे लेकर कालिदासका कुमार-सम्भव

काव्य रचित हुआ था—परन्तु हमारे भाग्यकी खूबी देखिए, यहाँ वसन्तकी हवासे 'कुमार—असम्भव' काव्य रचित होता है।

विपिन—होता है तो होने दीजिए न पूर्ण बाबू! उस काव्यमें जो देवता भस्म हुआ था उसे इस काव्यमें पुनर्जीवन दे दिया जाय!

पूर्ण—इस काव्यमें कुमार-सभा भस्म हो जाय! जो देवता भस्म हुए थे वही इसे भस्म करें! मैं हँसी नहीं करता श्रीश बाबू, हमारी चिरकुमार-सभा एक लाखका घर है। आग लगनेसे उसकी खैर नहीं। इससे तो यह अच्छा है कि विवाहित-सभा स्थापित की जाय। तब स्त्री-जातिकी ओरसे निर्भय रहा जा सकेगा। जो ईंटें भट्टीमें जल गई हैं, उनसे यदि मकान तैयार किया जाय, तो फिर दुबारा जलनेका डर नहीं रहता है!

श्रीश—चाहे जैसे लोगोंने विवाह कर करके विवाहकी मिट्टी खराब कर दी है पूर्ण बाबू! इसीलिये तो कुमार-सभा है। जितने दिन तक मेरे प्राण हैं उतने दिन तक इस सभामें प्रजापति ब्रह्माका प्रवेश निषिद्ध है।

विपिन—और पञ्चशरका?

श्रीश—वे आवें। एक बार उनके साथ घनिष्ठता हो गई कि बस, फिर कोई डर नहीं!

पूर्ण—देखो श्रीश बाबू!

श्रीश—क्या देखूँ? उन्हें खोजता हुआ भटक रहा हूँ! जब एक-बार दीर्घनिःश्वास छोड़ूँगा, कविता झाड़ूँगा, कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठ हो जाऊँगा, तब असली सन्यासी बन सकूँगा। हमारे कविने लिखा है—

> रात बीतनेके पहले ही
> जीवन-दीप जला जाना!
> करके मुझको मस्ताना!

प्रिये ! चलोगी कब तुम लेकर
दीप्त शिखाकी ज्वाला ?
राह देखता हूँ हा ! निशि-दिन
मैं होकर मतवाला !
जल मरनेके लिये हुआ है
यह मेरा दिल दीवाना,
रात बीतनेके पहले ही
जीवन-दीप जला जाना !

पूर्ण—वाह श्रीश बाबू ! तुम्हारे कविने कमाल किया है !—

रात बीतनेके पहले ही जीवन-दीप जला जाना !

कमरा सजा है, थालमें माला है, पलंगपर पुष्पशय्या है, केवल जीवन-दीप नहीं जल रहा है, सन्ध्या धीरे-धीरे रात्रि हो चली है ! वाह, खूब लिखा है ! किस किताबमें है, जरा बतलाओ तो ?

श्रीश—किताबका नाम आवाहन है।

पूर्ण—नाम भी चुनकर खूब बढ़िया रक्खा है ! (मनमें गुन-गुनाता है)—

रात बीतनेके पहले ही
जीवन-दीप जला जाना। (दीर्घ निःश्वास)

तुम लोग क्या घर जा रहे हो ?

श्रीश—घर किस तरफ है, यही भूल गए हैं भाई !

पूर्ण—आजकी रात रास्ता भुलानेवाली है, इसमें सन्देह नहीं। आपका क्या ख्याल है विपिन बाबू ?

श्रीश—विपिन बाबू इन सब बातोंमें कोई राय नहीं देते, इस डरसे कि कहीं उनके भीतरका कवित्व ज़ाहिर न हो जाय ! कृपण जिस चीज़की ज्यादा क़द्र करता है उसीको मिट्टीके नीचे गाड़ रखता है।

विपिन—मैं अस्थानमें व्यर्थ-व्यय नहीं करना चाहता भाई, स्थानकी खोजमें हूँ। जब मरना है, तब गङ्गाके घाटपर ही मरना अच्छा!

पूर्ण—यह तो बहुत अच्छी बात है—शास्त्रानुकूल है। विपिन बाबू अन्तिम कालके लिये कवित्व सञ्चित किये रखते हैं; जब अन्य वाक्य कहेंगे, तब ये रहेंगे निरुत्तर! आशीर्वाद करता हूँ कि औरोंके वे वाक्य मधुमिश्रित हों—

श्रीश—और उसके साथ कुछ मिर्चकी तिखाई भी रहे—

विपिन—और केवल वाक्य-वर्षण करके ही मुँहका समस्त कर्त्तव्य समाप्त न हो जाय—

पूर्ण—वाक्योंके विरामस्थल वाक्योंसे भी मधुरतर हों!—

श्रीश—और उस दिन नींद न आवे!—

पूर्ण—रात समाप्त न हो—

विपिन—चन्द्र पूर्णचन्द्र हो—

पूर्ण—विपिन वसन्तके फूलोंसे प्रफुल्ल हो उठे—

श्रीश—और हतभाग्य श्रीश कुञ्ज-द्वारके पास आकर ताक झाँक न करे!

पूर्ण—मारिए गोली श्रीश बाबू, अपने उस आवाहनमेंसे कोई कविता सुनाइए। बहुत सुन्दर रचना है—

रात बीतनेके पहले ही
जीवन-दीप जला जाना!

अहा! एक जीवन-प्रदीपकी शिखा और एक जीवन-प्रदीपके मुँहके निकट जरा लग जानेसे ही बस, सब ठीक हो जाता है। और कुछ नहीं चाहिए—दो कोमल उँगलियोंसे प्रदीपका जरा हिल जाना, जरा छू जाना, उसके बाद पल भरमें समस्त आलोकित हो जाता है! (आप ही आप)

रात बीतनेके पहले ही
जीवन-दीप जला जाना।

श्रीश—पूर्ण बाबू, जाते कहाँ हो?

पूर्ण—चन्द्र बाबूके मकानमें एक किताब भूल आया हूँ, उसे ढूँढ़ने जाता हूँ।

विपिन—ढूँढ़नेसे क्या आप पा लेंगे? चन्द्र बाबूका मकान क्या है भूलभुलैया है—वहाँ जो कुछ खोया जाता है, फिर नहीं पाया जाता!

(पूर्णका प्रस्थान।)

श्रीश—(दीर्घ निःश्वास त्याग कर) पूर्ण ही मजेमें है भाई विपिन।

विपिन—भीतरके बाष्पके दबावसे उसका मस्तिष्क कहीं सोडावाटरकी गोलीकी तरह एकाएक उड़ न जाय!

श्रीश—उड़ जाय तो उड़े न! लोहेके तारसे कसकर मस्तिष्कको ठीक जगहमें बाँध कर रखना ही क्या चरम पुरुषार्थ है? बीच-बीचमें यदि सिर अपने निर्दिष्ट स्थानसे च्युत न हुआ, तो रातदिन कुलीके बोझकी तरह उसका भार ढोनेसे क्या होगा? काट दो भैया तार, और उड़ जाने दो उसे!—उस दिन मैंने तुम्हें सुनाया था—

अरे पथिक, क्यों सावधान हो?
लौट चलो पथ भूल;
अश्रु-नीर-युत अन्ध नयनसे
उमड़े नदी अकूल!
उस विस्मृत पथमें शोभित है
लुप्त हृदयका कुञ्ज;
कण्टक तरुके तले पड़ा है
रक्तकुसुमका पुञ्ज!

सृष्टि-प्रलयकी लीलामें नित
वहाँ रहे सब झूल,
अरे पथिक, क्यों सावधान हो?
लौट चलो पथ भूल!

विपिन—आजकल तुम खूब कविता पढ़ने लग गए हो, एक दिन आफ़तमें पड़ोगे।

श्रीश—जो आदमी अपनी इच्छासे आफ़तका रास्ता ढूँढ़ रहा है, उसके लिये चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं है। आफ़तसे बचनेकी कोशिश करनेपर भी अचानक आफ़तमें पड़ बैठना ही बुरा है। आइए, आइए, रसिक बाबू, रातके वक़्त आप बाहर कैसे निकल आए!

रसिकका प्रवेश

रसिक—मेरे लिये क्या रात है और क्या दिन!—

वरमसौ दिवसो न पुनर्निशा,
ननु निशैव वरं न पुनर्दिनम्।
उभयमेतदुपैत्वथवा क्षयम्
प्रियजनेन न यत्र समागमः।

श्रीश—अस्यार्थः?

रसिक—अस्यार्थ है—

दिन हो चाहे रात, हमें क्या
करना है इससे भाई!
प्रियजनका न समागम है जब
हमें न कोई सुखदाई।

कितने ही दिन और कितनी ही रातें आज तक आती रही हैं और जाती रही हैं, पर प्रियजनके दर्शन नहीं हुए,—इसलिये क्या दिन और क्या रात, किसीके ऊपर मेरी श्रद्धा नहीं है!

श्रीश—अच्छा रसिक बाबू, अगर प्रियजन अकस्मात् यहीं आ पड़ें ?

रसिक—तो वह मेरी ओर नहीं ताकेंगी, तुम दोनोंमेंसे ही एकके भागमें पड़ेंगी।

श्रीश—ऐसा करेंगी, तो उसी दम उनकी गिनती अरसिक व्यक्तियोंमें हो जायगी।

रसिक—और झट इसके बाद ही परमानन्दसे काल-यापन करने लगेंगी! पर मैं ईर्ष्या नहीं करता, श्रीश बाबू! मेरे भाग्यमें जिन्होंने आनेमें इतनी देर की, उन्हें मैंने तुम लोगोंके लिये ही उत्सर्ग कर दिया। देवि, अपना वरमाल्य गूँथ लाओ! आज वसन्तके शुक्ल-पक्षकी रजनी है, आज अभिसार-यात्रा करो!—

> मन्दं निधेहि चरणौ, परिधेहि नीलम्
> वासः, पिधेहि वलयावलिमञ्चलेन।
> मा जल्प साहसिनि, शारदचन्द्रकान्त-
> दन्तांशवस्तव तमांसि समापयन्ति॥

अर्थात्—

> धीरे धीरे चलो तन्वि, पहनो नीलाम्बर,
> अञ्चलमें बाँधो निज मुखरित कङ्कण सुन्दर।
> कुछ न बोलना साहसिके! तव दन्त सुनिर्मल
> तिमिर नाश कर देंगे, पथ कर देंगे उज्ज्वल॥

श्रीश—रसिक बाबू, आपकी झोली तो बिलकुल भरी हुई है। ऐसे कितने श्लोकोंका उल्था कर रक्खा है ?

रसिक—ढेरके ढेर। लक्ष्मीजी तो आईं नहीं, केवल वाणीको लेकर ही दिन काट रहा हूँ।

श्रीश—क्यों भाई विपिन, अभिसारकी कल्पना बड़ी मनोहर मालूम देती है !

विपिन—तो फिर इसे पुनर्वार जारी करनेके लिये कुमार-सभामें एक प्रस्ताव उपस्थित कर देखो न !

श्रीश—कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनकी 'आयडिया' इतनी सुन्दर होती है कि संसारमें उनके चलानेका साहस नहीं होता। जिस रास्तेमें अभिसार हो सकता है, जहाँ कामिनियोंके हारसे मोती टूटकर बिखर जाते हैं, वह रास्ता क्या तुम्हारा पटलडाङ्गा स्ट्रीट है? वह रास्ता संसारमें कहीं नहीं है। विरहिणीका हृदय नीलाम्बर पहनकर मनोराज्यके पथमें इसी तरह निकलता है—छाती परसे मोती बिखरे पड़ते हैं, वह उस तरफ़ आँख उठाकर नहीं देखती—सच्चे मोती होते तो उठा लेती! आपका क्या ख्याल है रसिक बाबू?

रसिक—यह बात माननी ही पड़ेगी कि अभिसार मन-ही-मनमें अच्छा है, गाड़ी-घोड़ेके रास्तेमें बिल्कुल शोभा नहीं देता। आशीर्वाद देता हूँ श्रीश बाबू, इसी प्रकार वसन्तकी एक चाँदनी रातमें किसी एक झरोखेसे किसी रमणीका व्याकुल हृदय तुम्हारे घरकी तरफ़ अभिसार-यात्राको निकल पड़े!

श्रीश—आपका आशीर्वाद अवश्य फलेगा रसिक बाबू। आजकी हवामें यह संवाद मुझे मन-ही-मन मिल रहा है। तातिया डाकू जिस तरह पहलेसे सूचना देकर डाका डालता था, उसी तरह मेरी अज्ञात अभिसारिकाने मुझे पहलेसे ही अभिसारकी खबर दे दी है।

विपिन—अपनी छतके उस बरामदेको सजाकर प्रस्तुत हो रहना।

श्रीश—अपने दक्षिणके उस बरामदेकी एक कुर्सीपर मैं बैठता हूँ और एक कुर्सी सजी हुई रहती है।

विपिन—उसपर तो मैं आकर बैठता हूँ।

श्रीश—मध्वभावे गुडं दद्यात्—तो उसके अभावमें तुमसे भी काम चल सकता है!

विपिन—मधुमयी जब आवेंगी, तब अभागेके भाग्यमें तो होगा—लगुडं दद्यात्।

रसिक—(अलगसे) श्रीश बाबू, आपकी दक्षिण तरफ़वाली छतको चिह्नित करनेके लिये जिस पताकाको उड़ानेकी आवश्यकता है, उसे तो आप फेंक आए!

श्रीश—वह रूमाल क्या अभी चेष्टा करनेसे मिल सकता है?

रसिक—चेष्टा करनेमें हर्ज़ ही क्या है!

श्रीश—विपिन, तुम रसिक बाबूके साथ बातें करो; मैं अभी आया! (प्रस्थान।)

विपिन—अच्छा रसिक बाबू, ख़फ़ा न हूजिएगा—

रसिक—अगर होवें भी तो आपको घबराना नहीं चाहिए—मैं बहुत दुर्बल हूँ।

विपिन—दो एक प्रश्न आपसे करने हैं, आप नाराज़ तो नहीं होंगे?

रसिक—मेरी अवस्थाके सम्बन्धमें तो कोई प्रश्न नहीं है?

विपिन—नहीं।

रसिक—तब प्रश्न कीजिए, ठीक उत्तर मिलेगा।

विपिन—उस दिन जो महिला देखनेमें आई थीं, वह—

रसिक—वह आलोचनाके योग्य हैं। आप सङ्कोच न कीजिए। विपिन बाबू, उनके सम्बन्धमें अगर आप कभी कभी चिन्ता और चर्चा

किया करते हैं, तो इससे आपका कोई असाधारणत्व प्रमाणित नहीं होता–हम लोग भी ठीक यही किया करते हैं।

विपिन—अबलाकान्त बाबू शायद—

रसिक—उनकी बात मत पूछिए–उनके मुँहमें तो कोई दूसरी बात रहती ही नहीं।

विपिन—वह भी क्या—

रसिक—हाँ, यही बात है! पर मुश्किल यह है कि वह नृपबाला और नीरबाला, इन दोनोंमें किसको ज्यादा प्यार करते हैं, इसका कुछ निश्चय नहीं कर सकते–दोनोंके बीचमें उनका मन सर्वदा ही दोलायमान रहता है।

विपिन—पर उन दोनोंमेंसे किसीका उनके प्रति—

रसिक—नहीं, ऐसा भाव नहीं है कि विवाह कर सकें। ऐसा होता तो कोई झगड़ा ही नहीं था।

विपिन—इसीलिये शायद अबलाकान्त बाबू कुछ—

रसिक—कुछ चिन्तित रहते हैं।

विपिन—श्रीमती नीरबाला शायद गाना पसन्द करती हैं?

रसिक—पसन्द करती हैं, इसमें शक ही क्या है! आपके जेबमें ही तो इस बातका प्रमाण मौजूद है।

विपिन—(जेबसे गीतोंकी किताब निकालकर) इसे ले आना बड़ी ही असभ्यताका काम हुआ है।

रसिक—यह असभ्यता यदि आप न करते तो कोई और करता; परन्तु कोई न कोई करता अवश्य।

विपिन—आप लोग करते तो वह क्षमा कर देतीं, पर मैं—सचमुच ही बहुत अनुचित बात हो गई है, पर अब लौटानेसे भी तो—

रसिक—मूल अन्याय अन्याय ही बना रहेगा।

विपिन—अतएव—

रसिक—जैसे बावन वैसे तिरेपन। चुरानेमें जो दोष हो गया है वह, रख लेनेमें बहुत होगा तो कुछ थोड़ासा और बढ़ जायगा।

विपिन—किताबके बाबत उन्होंने क्या आपसे कुछ कहा है?

रसिक—कहा तो है बहुत कम, पर नहीं कहा है बहुत ज्यादा।

विपिन—कैसे?

रसिक—लज्जासे बहुत लाल हो उठीं।

विपिन—छिः छिः, वह लज्जा मेरी ही समझिए।

रसिक—आपकी लज्जा उन्होंने भाग करके बाँट ली है—जैसे अरुणकी लज्जासे उषा रक्तिम हो उठती है।

विपिन—मुझे अधिक पागल न बनाइए, रसिक बाबू!

रसिक—अपने दलकी ओर घसीट रहा हूँ जनाब!

विपिन—(किताब फिर जेबमें रख कर) अँगरेजीमें कहा जाता है कि दोष करना मनुष्यका धर्म है और क्षमा करना देवताका।

रसिक—आपने तब मनुष्यके धर्मका ही पालन किया है!

विपिन—देवी अपना धर्म निभावेंगी!

श्रीशका प्रवेश।

श्रीश—अबलाकान्त बाबूके साथ मुलाकात नहीं हुई।

विपिन—क्या उन्हें रातों रात सन्यासी बना देना चाहते हो?

श्रीश—कुछ भी हो, अक्षय बाबूसे मिल आया।

विपिन—अरे भाई, मैं उनसे एक बात कहना ही भूल आया था—जरा हो आता हूँ।

रसिक—(अलगसे) जान पड़ता है, फिरसे कुछ संग्रह करनेका इरादा है ? धीरे धीरे मनुष्य-धर्म आपके सिरपर सवार होता जाता है !

(विपिनका प्रस्थान ।)

श्रीश—रसिक बाबू, आपसे मैं कुछ परामर्श करना चाहता हूँ ।

रसिक—मेरी अवस्था परामर्श देनेके योग्य तो है; बुद्धि चाहे न हो ।

श्रीश—आपके यहाँ उस दिन जिन दो महिलाओंको देखा था, वे दोनों ही देखनेमें सुन्दरी जान पड़ीं ।

रसिक—आपकी रसज्ञताको दोष नहीं दिया जा सकता, सभी उन्हें ऐसा ही बतलाते हैं ।

श्रीश—उनके सम्बन्धमें अगर मैं आपसे कभी कभी बातचीत करूँ तो क्या—

रसिक—तो मुझे खुशी होगी । आपको भी इस आलोचनासे प्रसन्नता हो सकती है और उनका भी कोई नुकसान नहीं होगा ।

श्रीश—बिलकुल नहीं । झिल्ली अगर नक्षत्रोंके सम्बन्धमें आलोचना करे—

रसिक—तो उससे नक्षत्रोंकी निद्रामें विघ्न नहीं पड़ता ।

श्रीश—झिल्लीको ही अनिद्राका रोग हो सकता है । पर इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।

रसिक—आज तो ऐसा ही जान पड़ता है ।

श्रीश—जिनका रूमाल मैंने पाया था, आपको उनका नाम बतलाना होगा ।

रसिक—उनका नाम नृपबाला है ।

श्रीश—वह दोनोंमेंसे कौन हैं ?

रसिक—आप ही अन्दाज करके बतलाइए ।

श्रीश—जो रेशमकी लाल रङ्गकी साड़ी पहने थीं ?

रसिक—आप कहते जाइए ।

श्रीश—जो लज्जासे भागना चाहती थीं, पर भागनेमें भी लज्जा मालूम कर रही थीं—इस कारण क्षणभर चकित हरिणीकी तरह ठिठक-कर खड़ी हो रही थीं, बालोंके दो-एक गुच्छे उनकी आँखोंके ऊपर आ पड़े थे;—जब वह चाबियोंके गुच्छेवाले, नीचे खिसके हुए अञ्चलको बाएँ हाथसे ऊपर उठाकर द्रुत-वेगसे भाग चलीं, तो उनकी पीठपर बिखरे हुए काले बाल मेरे दृष्टि-पथके ऊपरसे एक काले नक्षत्रके समान दौड़कर नृत्य कर गए ।

रसिक—यह हुलिया तो नृपबालाका ही है, इसमें सन्देह नहीं । दोनों पाँव लज्जित हैं, हाथ कुण्ठित हैं, आँखें सङ्कुचित हैं, बाल कुञ्चित हैं;—दुःखकी बात है, आप हृदय नहीं देख सके—वह मानो फूलके भीतर छिपे हुए मधुके समान मधुर है, ओसकी तरह करुण है ।

श्रीश—रसिक बाबू, आप लोगोंके भीतर जो इतना कवित्व-रस सञ्चित है, उसका उत्स कहाँ है, यह मैं आज जान गया हूँ ।

रसिक—क्या करूँ, भेद खुल गया है श्रीश बाबू—

कवीन्द्राणां चेतः कमलवनमालातपरुचिम्,
भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव भवतीम् ।
विरिञ्चिप्रेयस्यास्तरुणतरशृङ्गारलहरीम्,
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सभारञ्जनमयीम् ॥

तुम कवीन्द्रोंके चित्तकमलवनमालाके किरण-स्वरूप हो, तुम्हें जो लेशमात्र भी भजते हैं, वे ही गम्भीर वाक्योंके द्वारा सरस्वतीकी सभा-

रञ्जनमयी तरुण लीला-लहरी प्रकाश करनेमें समर्थ होते हैं। मैंने कवियोंके चित्तकमलकी उस किरणलेखाका परिचय पा लिया है।

श्रीश—मैंने भी कुछ दिनोंसे उसका थोड़ा-बहुत परिचय पाया है, इसी लिये तबसे कवित्व मेरे लिये सहज हो गया है।

अक्षयका प्रवेश।

अक्षय—(आप-ही-आप) जान पड़ता है, ये दो नव-युवक मिल कर अब मुझे घरमें नहीं टिकने देंगे। एक तो जाकर चोरकी तरह मेरे घरमें कोई चीज टटोल रहे थे—पकड़े जाने पर अच्छी तरहसे सफाई न दे सके और अन्तको मुझे ले बैठे। इसके थोड़े ही समय पीछे दूसरे महाशय दिखाई दिए। वह मेरे कमरेकी किताबोंको उलट-पलट कर देख रहे थे। दूरसे देखकर ही भाग आया हूँ। अच्छी तरह इच्छानुसार चिट्ठी लिखना चाहता हूँ; परन्तु ये लोग नहीं लिखने देते। वाह, कैसी सुन्दर चाँदनी है!

श्रीश—लो, यह तो अक्षय बाबू हैं!

अक्षय—अरे बाबा! एक डाकू घरमें है और एक गलीके मोड़पर! हा प्रिये, तुम्हारे ध्यानसे जो लोग मेरे मनको विचलित कर रहे हैं, यदि वे मेनका, उर्वशी, रम्भा होते तो कोई अफ़सोसकी बात नहीं थी; परन्तु हाय! इच्छानुसार ध्यान-भङ्ग भी अक्षयके भाग्यमें नहीं बदा है। कलिकालमें इन्द्रदेव अवस्था अधिक हो जानेके कारण अरसिकसे हो गये हैं!

विपिनका प्रवेश।

विपिन—अक्षय बाबू, मैं आपको ही खोजता था।

अक्षय—हायरे हतभाग्य, ऐसी रात क्या मुझे खोजते हुए भटकनेके लिए निर्माण हुई थी!

In such a night as this,
When the sweet wind did gently kiss the trees
And they did make no noise, in such a night
Troilus methinks mounted the Troyan walls.
And sighed his soul toward the Grecian tents;
Where Cressid lay that night.

श्रीश—In such a night आप क्या करने बाहर निकले थे अक्षय बाबू ?

रसिक—

अपसरति न चक्षुषो मृगाक्षी
रजनिरियं च न याति नैति निद्रा।

मृगाक्षी आँखोंमें समा रही है, आँखोंसे दूर नहीं होती; रात भी नहीं बीत रही है और नींद भी नहीं आती। अक्षय बाबूकी हालत मैं खूब जानता हूँ।

अक्षय—तुम कौन हो ?

रसिक—मैं रसिक-चन्द्र हूँ—दोनों तरफ दो युवकोंका आश्रय लेकर यौवन-सागरमें प्रवाहित हो रहा हूँ।

अक्षय—इस अवस्थामें यौवन नहीं सह सकोगे, रसिक दादा !

रसिक—यौवन किस अवस्थामें सह्य होता है, यह मैं नहीं जानता, वह तो सदा ही असह्य है। श्रीश बाबू, आपको कैसा माळूम दे रहा है ?

श्रीश—अभी ठीक ठीक अनुभव नहीं हुआ है।

रसिक—मेरे समान परिणत अवस्थाकी प्रतीक्षामें तो नहीं हैं ? अक्षय बाबू, आज तो तुम बड़े अन्यमनस्क दिखाई देते हो।

अक्षय—तुम तो अन्यमनस्क देखोगे ही। क्योंकि मन ठीक तुम्हारी तरफ नहीं है। विपिन बाबू, आप मुझे ढूँढ़ते तो जरूर थे, पर ऐसा कोई

जरूरी काम आपका नहीं दिखलाई देता है, इस लिये मैं बिदा होता हूँ। मुझे एक जरूरी काम है। (प्रस्थान।)

रसिक—विरही चिट्ठी लिखने चले!

श्रीश—अक्षय बाबू हैं अच्छे। रसिक बाबू, उन्हींकी स्त्री शायद बड़ी बहन हैं? उनका नाम?

रसिक—पुरबाला।

विपिन—(नजदीक आकर) क्या नाम कहा?

रसिक—पुरबाला।

विपिन—वही शायद सबसे बड़ी हैं?

रसिक—हाँ।

विपिन—सबसे छोटीका क्या नाम है?

रसिक—नीरबाला।

श्रीश—और नृपबाला?

रसिक—वह नीरबालासे बड़ी हैं।

श्रीश—तो नृपबाला ही मँझली हैं।

विपिन—और नीरबाला छोटी हैं।

श्रीश—पुरबालासे छोटी नृपबाला हैं।

विपिन—उनसे छोटी हैं नीरबाला।

रसिक—(आप-ही-आप) लो ये तो नाम जपने लगे! मैं आफ़तमें फँसा। अब ज्यादा सर्दी नहीं सही जायगा। भागनेका उपाय सोचना चाहिए।

बनमालीका प्रवेश।

वन—आप लोग तो यहाँ हैं। मैं आप लोगोंके मकानपर गया था।

श्रीश—तो अब आप यहाँ रहें, हम मकानपर जाते हैं।

वन०—आप लोगोंको हमेशा व्यस्त पाता हूँ।

विपिन—आपने हमें कभी स्वस्थ नहीं देखा होगा—हम लोग व्यस्त ही रहते हैं।

वन०—पाँच मिनट अगर ठहरें तो—

श्रीश—रसिक बाबू, आप क्या ठण्ड मालूम नहीं कर रहे हैं?

रसिक—आप लोग इस समय मालूम कर रहे हैं, मैं बहुत पहलेसे मालूम कर रहा हूँ।

वन०—चलिए न, घर ही चले चलें।

श्रीश—इतनी रातको अगर आप हमारे घरमें घुसेंगे तो—

वन०—खैर, जैसी आपकी इच्छा। आप लोग आज व्यस्त हैं, फिर कभी देखा जायगा।

११

रसिक—शैल!

शैल—क्या है रसिक दादा!

रसिक—यह क्या मेरा काम है? महादेवके तपोभङ्गके लिये स्वयं कन्दर्पदेव थे—और मैं वृद्ध—

शैल—तुम यदि वृद्ध हो, तो वे दो युवक भी तो महादेव नहीं हैं!

रसिक—नहीं हैं, यह तो मैं भी खूब समझ गया हूँ। इसीलिये तो निर्भय होकर आया था। पर उनके साथ रास्तेकी ठण्डमें खड़े होकर आधी रात तक रसालाप करनेके उपयुक्त उत्ताप तो मेरे शरीरमें नहीं है!

शैल—उनके संसर्गसे उत्ताप सञ्चित कर लेना।

रसिक—सजीव पेड़ जिस सूर्यके तापसे प्रफुल्ल हो उठता है, सूखा काठ उसीसे फट जाता है। यौवनका उत्ताप बूढ़े आदमीके लिये उपयोगी नहीं होता।

शैल—कहाँ? तुम्हें देखकर तो यह नहीं जान पड़ता कि फट जाओगे।

रसिक—हृदय देखतीं तो मालूम कर सकतीं!

शैल—रसिक दादा, तुम्हारी अवस्था ही सबसे अधिक निरापद है। यौवनका दाह तुम्हारा क्या कर सकता है?

रसिक—शुष्केन्धने वह्निरुपैति वृद्धिम्! यौवनका दाह वृद्धको पाते ही भयानक वेगसे जल उठता है। इसीलिये तो 'वृद्धस्य तरुणी भार्या' आफ़त है!

नीरबालाका प्रवेश।

रसिक—आगच्छ वरदे देवि! तुम मुझे वर दोगी या नहीं, इसमें सन्देह है; किन्तु मैं तुम्हें एक 'वर' देनेके लिये जी जानसे कोशिश कर रहा हूँ। शिवजी तो कुछ भी नहीं करते हैं; फिर भी तुम्हारी पूजा पा रहे हैं, परन्तु यह बूढ़ा इतना मर खप रहा है, तब भी क्या कुछ नहीं पावेगा?

नीरबाला—शिवजी पाते हैं फ़ूल, तुम पाओगे उसका फल—तुम्हें ही वरमाल्य दूँगी रसिक दादा!

रसिक—मिट्टीके देवताको नैवेद्य चढ़ानेमें यह सुभीता है कि वह पूर्ण रूपसे वापस मिल जाता है—मुझे भी तू निश्चित होकर वरमाला पहना सकती है, जब ज़रूरत होगी वापस पा सकेगी। इससे तो भाई यह अच्छा हो कि तू एक गुलूबन्द बुनकर मुझे दे दे। वरमाल्यकी अपेक्षा वह इस बूढ़ेके लिए अधिक कामका होगा।

नीर—अच्छा, बुन दूँगी। पशमके एक जोड़ी जूते बुन रक्खे हैं, वे भी 'श्रीचरणेषु' होंगे।

रसिक—अहा, कृतज्ञता क्या इसीको कहते हैं? पर नीरू, मेरे लिये गुलूबन्द ही यथेष्ट होगा—आपादमस्तकके लिये कोई उपयुक्त व्यक्ति मिल जायगा, जूते उसीके लिये रहने दे।

नीर—अच्छा, तो अपनी वक्तृता भी तुम रहने दो।

रसिक—देखती है शैल? आजकल नीरूको भी लज्जा होने लगी है—लक्षण अच्छे नहीं हैं।

शैल—नीरू, यहाँ तू कर क्या रही है? आज तो यहाँ सभा बैठेगी। अभी कोई आ जायगा, तो आफ़तमें पड़ेगी।

रसिक—इस आफ़तका मजा उसे मिल चुका है। इसी लिए अब बार-बार आफ़तमें पड़नेके लिये छटपटा रही है।

नीर—देखो रसिक दादा, अगर तुम मुझे चिढ़ाओगे तो गुलूबन्द नहीं मिलेगा। देखो दीदी, तुम भी अगर उनकी बातोंमें इस तरह हँसोगी, तो उनकी ढिठाई और बढ़ जायगी।

रसिक—देखती है शैल, नीरू आजकल हँसी-दिल्लगी भी नहीं सह सकती है, मन इतना दुर्बल हो गया है! नीरू, किसी किसी समय कोकिलका बोल कड़वा मालूम देता है, शास्त्रमें यह लिखा है। मेरी दिल्लगी भी क्या तू आजकल कुहू-तान समझने लगी है?

नीर—इसीलिये तो तुम्हारे गलेमें गुलूबन्द लपेट देना चाहती हूँ। शायद इससे तान कुछ कमजोर पड़ जाय।

शैल—नीरू, अब झगड़ा न कर, चल, अभी लोग आ पड़ेंगे। (दोनोंका प्रस्थान।)

पूर्णका प्रवेश।

रसिक—आइए पूर्ण बाबू—

पूर्ण—अभी क्या और कोई नहीं आया?

रसिक—आप शायद अकेले इस बूढ़ेको देखकर हताश हो पड़े हैं। और भी आ जायँगे पूर्ण बाबू!

पूर्ण—हताश क्यों होऊँगा रसिक बाबू?

रसिक—यह मैं कैसे कहूँ! पर ज्यों ही आप कमरेमें घुसे, आपकी आँखोंको देखकर यही जान पड़ा कि वे जिसकी खोजमें हैं वह व्यक्ति मै नहीं हूँ।

पूर्ण—चक्षुतत्त्वमें आपका इतना अधिकार कैसे हुआ?

रसिक—मेरी ओर कभी कोई ताकता नहीं पूर्ण बाबू, इसी लिये इस वृद्धावस्था तक दूसरेके चक्षुओंका पर्यवेक्षण करनेका मुझे यथेष्ट अवसर मिला है। यदि आपके समान शुभादृष्ट होता तो दृष्टितत्त्व प्राप्त न करके अनेक दृष्टियाँ लाभ कर सकता। पर कुछ भी कहिए पूर्णबाबू, इन दो आँखोंके समान आश्चर्यजनक सृष्टि और कुछ नहीं है—शरीरमें मन अगर कहीं प्रत्यक्ष वास करता है, तो इन आँखोंमें।

पूर्ण—(उत्साहके साथ) आपने ठीक कहा रसिक बाबू! इस क्षुद्र शरीरमें अगर कहीं अनन्त आकाश या अनन्त समुद्रकी तुलना पाई जा सकती है तो वह आँखोंमें ही।

रसिक—

> निःसीमशोभासौभाग्यं नताङ्ग्या नयनद्वयम्।
> अन्योऽन्यालोकनानन्दविरहादिव चञ्चलम्॥

समझे पूर्ण बाबू?

पूर्ण—नहीं, पर समझनेकी इच्छा है ।

रसिक—

आनताङ्गिनीकी शोभा हैं सुन्दर नयन युगल,
एक दूसरेको न देखकर हुए हाय ! चञ्चल ।

पूर्ण—नहीं रसिक बाबू, यह ठीक नहीं है । यह केवल वाक्-चातुर्य है । दो आँखें एक दूसरेको नहीं देखता चाहतीं ।

रसिक—अन्य दो आँखोंको देखना चाहती है ? ऐसा ही अर्थ कर लीजिए न ! अन्तिम पद बदल दिया जाय—

प्रियजनकी आँखें न देखकर हुए हाय, चञ्चल ।

पूर्ण—बहुत अच्छा बना है, रसिक बाबू—

प्रियजनकी आँखें न देखकर हुए हाय, चञ्चल ।

पर वे बन्दी हैं, पिंजड़ेकी चिड़ियाकी तरह केवल झटपटाती रहती हैं—जहाँ प्रियजनकी आँखें है वहाँको पङ्ख फैलाकर नहीं उड़ सकतीं ।

रसिक—यह दृष्टिके आदान-प्रदानका मामला कैसा बेढब है, इसका भी उल्लेख शास्त्रमें है—

हत्वा लोचनविशिखैर्गत्वा कतिचित्पदानि पद्माक्षी,
जीवति युवा न वा किं भूयो भूयो विलोकयति ।

अर्थात्—

नयन बाणसे मार युवाको जाती है बाला कुछ दूर,
मरा या नहीं, इस संशयसे फिरकर उसको जाती घूर ।

पूर्ण—रसिक बाबू, फिरकर घूरती है केवल काव्यमें ।

रसिक—इसका कारण यह है कि काव्यमें फिरकर घूरनेमें कोई असुविधा नहीं है । संसार अगर इसी प्रकार छन्दोंके द्वारा रचा जाता, तो वह यहाँ भी फिर-फिरकर घूरती पूर्ण बाबू,—यहाँ मन फिरकर देखता है, आँखें नहीं ।

पूर्ण—(आह भरकर) संसार बड़ी खराब जगह है रसिक बाबू ! पर आपने वह खूब कहा है—

प्रियजनकी आँखें न देखकर हुए हाय, चञ्चल !

रसिक—अहा पूर्ण बाबू, नयनकी चर्चा जब छिड़ गई है, तो उसे समाप्त करनेको जी नहीं करता—

लोचने हरिणगर्वमोचने, मा विभूषय नताङ्गि कज्जलैः,
सायकः सपदि जीव-हारकः, किं पुनर्हि गरलेन लेपितः ?

अर्थात्—

हाय मृगाक्षी, अब न लगाओ
आँखोंमें किञ्चित् काजल।
यों ही बाण प्राण हरता है,
फिर क्यों लेपा जाय गरल ?

पूर्ण—ठहरिए, रसिक बाबू, थम जाइए। ये देखिए कौन आ रहे हैं !

चन्द्र बाबू और निर्मलाका प्रवेश।

चन्द्र—अक्षय बाबू !

रसिक—मेरे साथ अक्षय बाबूका सादृश्य है, यह सुनकर वह और उनके बन्धु-बान्धव दुःखित होंगे। मैं रसिक हूँ।

चन्द्र—माफ़ कीजिएगा रसिक बाबू, भ्रम हो गया था।

रसिक—माफ़ करनेका क्या कारण घटित हुआ है साहब ? मुझे अक्षय बाबू समझकर अपने मेरा ज़रा भी असम्मान नहीं किया है। माफ़ी उनसे माँगिएगा। पूर्ण बाबूके साथ मैं अभी विज्ञान-चर्चा कर रहा था चन्द्र बाबू !

चन्द्र—मैंने यह विचार कर रक्खा था कि महीनेमें एक दिन विज्ञानकी आलोचनाके लिये निश्चित किया जायगा। आज किस विषयपर आलोचना चल रही थी पूर्ण बाबू?

पूर्ण—नहीं, वह कुछ नहीं थी चन्द्र बाबू!

रसिक—आँखोंकी दृष्टिके सम्बन्धमें बातें हो रही थीं।

चन्द्र—दृष्टिका रहस्य बड़ा गहन है, रसिक बाबू!

रसिक—गहन है, इसमें सन्देह नहीं। पूर्ण बाबूका भी यही मत है।

चन्द्र—सभी पदार्थोंकी छाया हमारे दृष्टिपटपर उलटी पड़ती है। उसको हम लोग क्योंकर सीधा देखते हैं, इस सम्बन्धमें कोई भी मत मुझे सन्तोषजनक प्रतीत नहीं होता।

रसिक—सन्तोषजनक होगा ही क्यों? सीधा देखना और टेढ़ा देखना, इन सब बातोंसे मनुष्यका सिर चकराने लग जाता है। विषय बड़ा सङ्कटमय है।

चन्द्र—निर्मलाके साथ रसिकबाबूका परिचय नहीं है क्या? रसिकबाबू, यही हमारी कुमारसभाकी प्रथम स्त्री-सम्य हैं।

रसिक—(नमस्कार करके) यह हमारी सभाकी सभा-लक्ष्मी हैं। आप लोगोंके आशीर्वादसे हमारी सभामें बुद्धि-विद्याका अभाव नहीं था, यह अब हमें श्री दान करने आई हैं।

चन्द्र—केवल श्री ही नहीं, शक्ति भी।

रसिक—एक ही बात है, चन्द्र बाबू। शक्ति जब श्रीके रूपमें आविर्भूत होती हैं तभी उनकी शक्तिकी सीमा नहीं रहती। क्यों पूर्ण बाबू?

पुरुषवेशी शैलका प्रवेश।

शैल—माफ़ कीजिएगा, चन्द्र बाबू! मुझे आनेमें देर तो नहीं हुई?

चन्द्र—(घड़ी देखकर) नहीं, अभी समय नहीं हुआ। अबला-कान्त बाबू, आज मरी भाञ्जी निर्मला सभाकी सभ्या हुई है।

शैल—(निर्मलाके निकट बैठकर) देखिए, पुरुष स्वार्थी होते हैं, स्त्रियोंको केवल अपनी सेवाके लिये ही बन्द कर रखना चाहते हैं। चन्द्र बाबूने आपको हमारी सभाके हितके लिये दान किया है, इससे उनकी महत्ता प्रकट होती है।

निर्मला—मेरे मामाके लिये देशका काम और अपना काम एक ही बात है! मैं अगर आप लोगोंकी सभाका कोई काम कर सकूँ, तो वह उन्हींकी सेवा होगी।

शैल—आपने सौभाग्यसे चन्द्रबाबूको अच्छी तरह जाननेकी योग्यता प्राप्त कर ली है, इस कारण आप धन्य हैं।

निर्मला—मैं उन्हें नहीं जानूँगी तो कौन जानेगा?

शैल—आत्मीय सब समय आत्मीयको नहीं जानता। आत्मीयताके कारण छोटा बड़ा दिखलाई देता है, इसमें सन्देह नहीं; पर कभी कभी बड़ा भी छोटा दिखलाई देता है। चन्द्रबाबूको आप यथार्थ रूपसे पह-चान गई हैं, इससे आपकी योग्यताका परिचय मिलता है।

निर्मला—पर मेरे मामाको यथार्थ रूपसे पहचानना बहुत सहज है, उनमें एक ऐसी ही अपूर्व स्वच्छता है!

शैल—देखिए, इसी कारण तो उन्हें ठीक तरहसे जानना कठिन है। दुर्योधन स्फटिककी दीवारको दीवारके बगैर देख ही नहीं पाया। सरल स्वच्छताकी महत्ता क्या सभी समझ सकते हैं? उसके प्रति

अवज्ञा प्रकाशित की जाती है। आडम्बरसे ही लोगोंकी दृष्टि आकर्षित होती है।

निर्मला—आपने ठीक बात कही है। बाहरके लोगोंमें मेरे मामाको कोई भी नहीं पहचानता। बाहरके आदमियोंमें आपके मुँहसे मामाके सम्बन्धमें ये बातें सुनकर मुझे कितना आनन्द हो रहा है, यह मैं आपको कैसे बतलाऊँ!

शैल—आपकी भक्ति भी मुझे ठीक इसी तरह आनन्द दे रही है।

चन्द्र—(दोनोंके निकट आकर) अबलाकान्त बाबू, तुम्हें जो किताब मैंने दी थी, उसे तुमने पढ़ा है?

शैल—पढ़ा है, और उसमेंसे आपके व्यवहारके लिए सब बातें नोट करके तैयार कर रक्खी हैं।

चन्द्र—मेरा बड़ा उपकार होगा—मुझे बड़ी-प्रसन्नता हुई, अबलाकान्त बाबू। पूर्ण भी मुझसे वह किताब माँग ले गए थे, पर उनकी तबीयत अच्छी न होनेसे वह कुछ न कर सके। किताब तुम्हारे पास यहाँ है?

शैल—ला देता हूँ। (प्रस्थान।)

रसिक—पूर्ण बाबू, आप उदास क्यों हैं? कुछ तबीयत ख़राब है क्या?

पूर्ण—नहीं, कुछ नहीं। रसिक बाबू, जो अभी यहाँसे गए हैं, उन्हींका नाम क्या अबलाकान्त है?

रसिक—हाँ।

पूर्ण—मुझे उनका व्यवहार कुछ अच्छासा नहीं मालूम होता है।

रसिक—छोटी उम्र है न, इसी लिये—

पूर्ण—महिलाओंके साथ किस प्रकारका आचरण किया जाना चाहिए, यह उन्हें सीखना चाहिए।

रसिक—मैंने भी इस बात पर गौर किया है कि स्त्रियोंके साथ वह पुरुषोचित व्यवहार प्रकट करना नहीं जानते—बहुत गले पड़नेका भाव दिखाते हैं! यह शायद छोटी अवस्थाका धर्म है।

पूर्ण—हम लोगोंकी अवस्था भी तो बहुत प्राचीन नहीं हुई, पर हम लोग तो—

रसिक—यह तो मैं भी देखता हूँ, आप काफ़ी दूर दूर रहते हैं; पर वह शायद इस बातको सम्यतानुकूल नहीं समझतीं। उन्हें शायद भ्रम हा रहा है कि आप उनकी उपेक्षा करते हैं।

पूर्ण—क्या करूँ रसिक बाबू, बतलाइए न? मैं तो सोच ही नहीं पाता कि क्या बात कहनेके लिये मैं उनके पास जाऊँ।

रसिक—सोचने पर आप नहीं सोच सकेंगे। विना सोचे अग्रसर होनेसे बात स्वयं निकल पड़ेगी।

पूर्ण—नहीं रसिक बाबू, मेरे मुँहसे एक बात नहीं भी निकलेगी। क्या कहूँ, आप ही बतलाइए न?

रसिक—ऐसी कोई बात न कहिएगा जिससे संसारमें युगान्तर हो जाय। जाकर कहिए, आजकल कैसी गजबकी गरमी पड़ रही है!

पूर्ण—वह अगर कहें कि हाँ गरमी पड़ रही है, तो उसके बाद क्या कहूँ?

विपिन और श्रीशका प्रवेश।

श्रीश—(चन्द्र बाबू और निर्मलाको नमस्कार करके निर्मलासे) आप लोगोंका उत्साह घड़ीको भी पीछे छोड़कर जा रहा है—यह देखिए, अभी साढ़े छः नहीं बजे!

निर्मला—आज आप लोगोंकी सभामें मेरा पहला दिन है, इसी लिये सभा बैठनेके पहले ही आ पहुँची हूँ–प्रथम सभ्य होनेका सङ्कोच दूर हटानेके लिये कुछ समयकी आवश्यकता होती है।

विपिन—पर आपसे निवेदन है कि आप हमसे बिलकुल सङ्कोच न कीजिए। आजसे आपको हम लोगोंका भार ग्रहण करना होगा—अभागे पुरुष-सभ्योंकी अनुग्रहपूर्वक देखभाल रखनी होगी और उन्हें हुक्म देकर चलाना होगा!

रसिक—जाइए पूर्ण बाबू, आप भी उमसे कोई बात जाकर कहिए।

पूर्ण—क्या कहूँ?

निर्मला—चलानेकी क्षमता मुझमें नहीं है।

श्रीश—आपने क्या हमें इतना अचल समझ लिया है?

विपिन—लोहेसे अचल और क्या हो सकता है? पर अग्नि लोहेको चलाती है–हम लोगोंके समान भारी चीजोंको चलानेके लिये आपके समान दीप्तिकी आवश्यकता है।

रसिक—सुन रहे हैं पूर्ण बाबू?

पूर्ण—मैं क्या कहूँ, बतलाइए न?

रसिक—कहिए लोहेको चलानेके लिये भी अग्नि चाहिए और गलानेके लिये भी अग्नि चाहिए!

विपिन—क्यों पूर्ण बाबू, रसिक बाबूके साथ परिचय हो गया है?

पूर्ण—हाँ।

विपिन—आपकी तबीयत तो आज अच्छी है?

पूर्ण—हाँ।

विपिन—बहुत पहलेसे आगए थे क्या?

पूर्ण—नहीं तो।

विपिन—देखते हैं, अबकी सर्दी घुड़दौड़के घोड़ेकी तरह बड़ी तेजीसे दौड़कर अन्तको माघके बीचमें ही एकदम ठिठककर थम गई है।

पूर्ण—हाँ।

श्रीश—क्यों पूर्ण बाबू, पिछली बार आपकी तबीयत खराब थी, अब तो अच्छी है?

पूर्ण—हाँ।

श्रीश—आज तक कुमार-सभामें कितना बड़ा अभाव था, आज यह बात भीतर आते ही जान गया हूँ। सोनेके मुकुटके बीचमें एक हीरेकी कसर रह गई थी—आज वह पूरी हो गई। आपका क्या ख्याल है पूर्ण बाबू?

पूर्ण—आप लोगोंकी तरह रचना-शक्ति मुझमें नहीं है—मैं इस तरह बात बनाना नहीं जानता, विशेष कर महिलाओंके सम्बन्धमें।

श्रीश—आपकी अक्षमताकी बात सुनकर खेद हुआ पूर्ण बाबू—आशा करता हूँ आप धीरे-धीरे उन्नति कर लेंगे।

विपिन—(रसिकको अलग ले जाकर) इन दो वीर पुरुषोंमें युद्ध चलने दीजिए, तब तक चलिए आपसे दो एक बातें करनी हैं। देखिए, उस गीतकी किताबके सम्बन्धमें फिर कोई चर्चा छिड़ी थी?

रसिक—अपराध करना मानवका धर्म है और क्षमा करना देवीका, यह चर्चा मैंने प्रसङ्गवश छेड़ी थी—

विपिन—वह क्या बोलीं ?

रसिक—कुछ न कहकर बिजलीकी तरह चली गईं।

विपिन—चली गईं !

रसिक—पर उस बिजलीमें वज्र नहीं था।

विपिन—गर्जन !

रसिक—वह भी नहीं।

विपिन—तब ?

रसिक—किसी एक तरफ वर्षणका आभास था।

विपिन—इसका अर्थ ?

रसिक—क्या बतलाऊँ साहब ! अर्थ भी हो सकता है, अनर्थ भी।

विपिन—रसिक बाबू, आप क्या कहते हैं, मैं कुछ भी नहीं समझा !

रसिक—समझेंगे कैसे—बड़ी मुश्किल बात है !

श्रीश—(निकट आकर) क्या बात मुश्किल है साहब ?

रसिक—यही वृष्टि-वज्र-विद्युत्‌की बात।

श्रीश—अरे भाई विपिन, इससे भी कठिन बात अगर सुनना चाहते हो, तो पूर्णके पास जाओ।

विपिन—कठिन बात सुननेके लिये मैं बहुत उत्सुक नहीं हूँ।

श्रीश—युद्ध करनेकी अपेक्षा सन्धि करनेकी विद्या अधिक कठिन है। वह विद्या तुम्हें मालूम है। तुमसे प्रार्थना है कि पूर्णको जरा शान्त कर दो। मैं तब तक रसिक बाबूके साथ वज्र-विद्युत्-वृष्टिकी आलोचना कर लेता हूँ। (विपिनका प्रस्थान।) रसिक बाबू, आपने उस दिन

जिनका नाम नृपबाला बतलाया था, वह—वह—उनके सम्बन्धमें विस्तृत रूपमें कुछ कहिए। उस दिन अकस्मात् उनके मुँहपर एक ऐसा स्निग्ध भाव मैंने देखा था कि उनके सम्बन्धमें किसी प्रकार कौतूहल दमन नहीं कर सकता हूँ।

रसिक—विस्तृत रूपसे कहनेसे कौतूहल और बढ़ जायगा। इस प्रकारका कौतूहल "हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।" मैं तो उन्हें इतने दिनोंसे जानता हूँ, पर उस कोमल हृदयका स्निग्ध मधुर भाव मेरे लिये "क्षणे क्षणे तन्नवतामुपैति।"

श्रीश—अच्छा वह—मैं नृपबालाकी बात पूछ रहा हूँ।

रसिक—मैं खूब समझ रहा हूँ।

श्रीश—तो वह—और क्या प्रश्न करूँ? उनके सम्बन्धमें कुछ कहिए न! कल उन्होंने क्या कहा, आज सुबह क्या किया, चाहे जितनी सामान्य बात हो, आप कहिए, मैं सुनूँ।

रसिक—(श्रीशका हाथ पकड़कर) बड़ी खुशी हुई श्रीश बाबू, आप यथार्थ भावुक हैं, इसमें सन्देह नहीं। आप उन्हें अकस्मात् एक मुहूर्तके लिये देखनेपर भी यह कैसे समझ गए कि उनके सम्बन्धकी कोई भी बात सामान्य और तुच्छ नहीं है! वह जब कहती हैं रसिक दादा, यह केरोसीनकी बत्ती जरा बढ़ा दो, तो मुझे मालूम होता है जैसे एक नई बात सुननेमें आई—आदि कविके प्रथम अनुष्टुप छन्दकी तरह। क्या कहूँ श्रीश बाबू, आप सुनेंगे तो हँसेंगे, उस दिन जब घरमें जाकर देखा कि नृपबाला सुईके भीतर तागा डाल रही हैं और उनकी गोदपर तकिएका खोल पड़ा है, तो ऐसा मालूम हुआ जैसे वह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक दृश्य है। कितनी बार कितने ही दर्जियोंकी दूकानोंके सामनेसे गया हूँ, कभी आँख उठाकर नहीं ताका, पर—

श्रीश—अच्छा रसिक बाबू, क्या वह अपने ही हाथोंसे घरके सब काम करती हैं ?

शैलका प्रवेश।

शैल—रसिक दादाके साथ क्या परामर्श कर रहे हैं ?

रसिक—कुछ भी नहीं, एक अत्यन्त तुच्छ विषयको लेकर हम लोगोंकी आलोचना चल रही है।

चन्द्र—सभाके अधिवेशनका समय हो गया है, अब देर-करनी उचित नहीं। पूर्ण बाबू, कृषि-विद्यालयके सम्बन्धमें आज तुमने जो प्रस्ताव उत्थापित करनेका विचार किया था, उसे आरम्भ करो।

पूर्ण—(खड़े होकर घड़ीकी चेन हिलाता हुआ) आज—आज—(खाँसी।)

रसिक—(पास बैठकर धीमी आवाज़में) आज इस सभाने—

पूर्ण—आज इस सभाने—

रसिक—जो नूतन सौन्दर्य और गौरव लाभ किया है—

पूर्ण—जो नूतन सौन्दर्य और गौरव लाभ किया है—

रसिक—पहले उसके लिये बधाई दिए विना नहीं रह सकता।

पूर्ण—पहले उसके लिये बधाई दिए विना नहीं रह सकता।

रसिक—(धीमी आवाज़में) कहते चलिए पूर्ण बाबू—

पूर्ण—उसके लिये बधाई दिए विना नहीं रह सकता।

रसिक—घबराइए मत पूर्ण बाबू, कहते चलिए !

पूर्ण—जो नूतन सौन्दर्य और गौरव—(खाँसी) जो नूतन सौन्दर्य (फिर खाँसी) बधाई—

रसिक—(उठकर) सभापति महाशय, मेरा एक निवेदन है। आज पूर्ण बाबू सभी सभ्योंके पहले सभामें उपस्थित हुए हैं। उनकी तबीयत अच्छी नहीं है। फिर भी वे उत्साहको नहीं रोक सकते। आज हमारी सभामें जो प्रथम अरुणोदय हुआ है, उसे देखनेके लिये पक्षी बहुत सबेरे ही नीड़से उड़कर चला आया है, पर तबीयत ठीक न होनेसे उसमें अपने पूर्ण हृदयका आवेग मुखसे व्यक्त करनेकी शक्ति नहीं है— इस लिये उसे आज छुट्टी देनी होगी। और आज नव-प्रभातकी जिस अरुणच्छटाका स्तव-गान करनेके लिये वह उठा था, उसके निकट भी मैं इस अवरुद्ध-कण्ठ भक्तकी तरफ़से माफ़ी चाहता हूँ। पूर्ण बाबू, आज हमारी सभाका कार्य स्थगित रहे यह भी मंजूर है, पर मैं आपको वर्तमान अवस्थामें कोई भी प्रस्ताव उत्थापित नहीं करने दूँगा। सभापति महाशय क्षमा करेंगे, यह आशा करता हूँ और सभाको आज जिन्होंने अपनी प्रभाद्वारा सार्थकता प्रदान की है, क्षमा करना उनके तो स्वजाति-सुलभ करुण हृदयका स्वाभाविक धर्म ही है।

चन्द्र—मैं जानता हूँ, कुछ दिनोंसे पूर्ण बाबूकी तबीयत अच्छी नहीं है। इस हालतमें हम उन्हें तकलीफ़ नहीं दे सकते। विशेषतः अबलाकान्त बाबूने घरमें बैठकर ही हमारी सभाका कार्य बहुत आगे बढ़ा दिया है। आज तक भारतवर्षीय कृषिके सम्बन्धमें जितने सरकारी लेख प्रकाशित हुए हैं, वे सब मैंने उन्हें दिए थे। उन्होंने उनमेंसे ज़मीनमें खाद डालनेके सम्बन्धकी बातोंका सार सङ्कलन कर दिया है और उसके आधारपर उन्होंने सर्वसाधारणकी जानकारीके लिये हिन्दीमें एक पुस्तक लिखनेका भी वचन दिया है। उन्होंने जैसे उत्साह और दक्षताके साथ सभाके कार्यमें सहायता पहुँचाई है, उसके लिये उन्हें अनेकानेक धन्यवाद देकर आजकी सभा आगामी रविवारके

लिये स्थगित की जाती है। विपिन बाबूने सभी योरपीय छात्रालयोंके नियमों और कार्य-प्रणालीके सङ्कलनका भार लिया था और श्रीश बाबूने अपने खर्चसे लण्डन नगरके सभी विचित्र लोकोपयोगी अनुष्ठानोंकी सूची संग्रह करके उसके सम्बन्धमें एक प्रबन्ध लिखनेका वचन दिया था, शायद अभी तक वे इन कामोंको पूरा नहीं कर सके हैं। मैं एक परीक्षामें लगा हूँ—सभी जानते हैं कि हमारे देशकी बैलगाड़ी इस प्रकारसे निर्मित होती है कि उसके पीछे भार पड़ते ही वह ऊपरको उठ जाती है और बैलोंके गलेपर जोर पड़ता है, और अगर किसी कारण बैल गिर पड़ते हैं तो बोझासमेत गाड़ी उनके ऊपर पड़ जाती है। इसीके प्रतिकारके लिये मैंने एक उपाय सोचा है। आशा करता हूँ, इस काममें सफल होऊँगा। हम लोग मुँहसे गो-जातिके सम्बन्धमें दया प्रकट करते हैं, पर प्रतिदिन उसके सहस्रों अनावश्यक कष्टोंके प्रति उदासीनता प्रकट करते हैं। मेरी समझमें इस प्रकारकी मिथ्या और शून्य भावुकता संसारमें और कहीं नहीं है। अगर हमारी सभा इसका कोई प्रतीकार कर सकती है, तो वह धन्य होगी। मैंने कल रात गाड़ीवानोंके गाँवमें जाकर बैलोंकी अवस्थाके सम्बन्धमें अलोचना की है। बैलोंके प्रति अनर्थक अत्याचार स्वार्थ और धर्म, दोनोंका विरोधी है। गाड़ीवानोंको यह बात समझानी बहुत कठिन नहीं है। इस सम्बन्धमें मैं गाड़ीवानोंकी एक पञ्चायत करनेकी चेष्टामें हूँ। श्रीमती निर्मला आकस्मिक अपघातोंकी तात्कालिक चिकित्साके सम्बन्धमें रामरतन डाक्टर महाशयके निकट नियमित उपदेश प्राप्त कर रही हैं। दो-एक बड़े घरोंके जनानोंमें भी वह इस सम्बन्धमें शिक्षा देनेकी चेष्टा कर रही हैं। इस प्रकार प्रत्येक सभ्यकी स्वतन्त्र और विशेष चेष्टासे हमारी यह क्षुद्र कुमार-सभा सर्वसाधारणकी आँख बचाकर धीरे धीरे विचित्र सफलता प्राप्त करेगी, इस सम्बन्धमें मुझे पूरा विश्वास है।

श्रीश—क्यों भाई विपिन, अपना काम तो मैंने अभी तक आरम्भ नहीं किया।

विपिन—मेरी भी ठीक यही हालत है।

श्रीश—पर करना तो होगा।

विपिन—मुझे भी करना होगा।

श्रीश—कुछ दिनोंके लिए अन्य समस्त आलोचनाओंका त्याग किए बिना काम नहीं चलेगा।

विपिन—मैं भी यही सोचता हूँ।

श्रीश—पर अबलाकान्त बाबू धन्य हैं—वह न मालूम कब अपना काम पूरा कर डालते हैं, कुछ समझमें नहीं आता।

विपिन—यही तो बड़ा भारी आश्चर्य है! और जान पड़ता है ऐसा कि उनके अन्यमनस्क होनेका विशेष कारण है।

श्रीश—जाकर एक बार उनके साथ आलोचना कर आता हूँ।

(शैलके पास जाता है।)

पूर्ण—रसिक बाबू, आपको क्या कहकर धन्यवाद दूँ?

रसिक—कुछ न कहिए, मैं यों ही समझ लूँगा। पर पूर्ण बाबू, सभी मेरे समान नहीं होते—सभी अन्दाजसे नहीं समझ लेते, उन्हें मुँहसे कहनेकी आवश्यकता होती है।

पूर्ण—आप मेरे हृदयकी बात समझ गए हैं, रसिक बाबू—आपके कारण मैं बच गया हूँ। मेरे मनमें जो बात है उसे मुखसे व्यक्त करनेमें भी सङ्कोच होता है। आप मुझे सलाह दीजिए कि क्या करना होगा।

रसिक—पहले आप उनके पास जाकर कोई एक बात छेड़ दीजिए।

पूर्ण—यह देखिए न, अबलाकान्त बाबू फिर उनके पास जाकर बैठ गए हैं।

रसिक—बैठने दीजिए न, वह उन्हें चारों तरफ़से घेरकर तो खड़े नहीं हैं! अबलाकान्तको व्यूहके समान भेदकर तो आपको जाना नहीं होगा! आप भी जाकर एक किनारे खड़े हो जाइए न!

पूर्ण—अच्छा, देखना चाहिए।

शैल—(निर्मलासे) मुझसे ऐसा न कहिए, आप मुझसे बहुत ज्यादा काम कर रही हैं।—पर बेचारे पूर्ण बाबूके लिये मुझे बड़ा अफ़सोस है। आप आवेंगी, इसी ख्यालसे वह आज बड़े उत्साहसे आए हुए थे—पर अपना कथन व्यक्त न कर सकनेके कारण वह शायद बहुत विमर्ष हो रहे हैं। आप अगर उन्हें—

निर्मला—आप अपने अन्यान्य सभ्योंसे मुझे विशेष रूपसे पृथक् करके देख रहे हैं, इसलिये मुझे सङ्कोच हो रहा है। मुझे सभी सभ्योंमें एक रूपसे देखिए, महिलाके बतौर स्वतन्त्र रूपसे मेरी गणना न कीजिए।

शैल—आप महिला होकर पैदा हुई हैं, यह सुविधा हमारी सभा नहीं छोड़ सकती। आपके हमारे साथ मिलकर एक हो जानेसे जितना काम होगा, स्वतन्त्र होनेसे उसकी अपेक्षा अधिक होगा। जो आदमी गुण*के द्वारा नावको आगे ढकेलता है, उसे नावसे कुछ अलग रहना पड़ता है। चन्द्र बाबू कर्णधार हैं, इस कारण हमसे कुछ दूर और ऊँचेपर हैं, आपको गुणके द्वारा आकर्षित करना होगा, फलतः आपको भी अलग रहना होगा। हम लोग सब पतवार चलानेवालोंके दलमें शामिल हैं।

* रस्सी।

निर्मला—आप भी कर्मसे और भावसे इन सबसे पृथक् जान पड़ते हैं। केवल एक ही दिन आपको देखकर मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि इस सभामें केवल आप ही मेरे प्रधान सहायक होंगे।

शैल—यह तो मेरा सौभाग्य है! आइए पूर्ण बाबू! हम लोग आपकी ही चर्चा कर रहे थे। बैठिए।

श्रीश—अबलाकान्त बाबू, आइए, आपके साथ बहुत बातें करनी हैं। (अलग ले जाकर) आज सभाके पुराने तीन सभ्योंको आप दो व्यक्तियोंने लज्जित कर दिया है। और यह ठीक ही हुआ है—पुरातनमें प्राण सञ्चार करनेके लिये ही नूतनका प्रयोजन होता है।

शैल—और नई लकड़ीमें आग लगानेके लिये पुरानी लकड़ीकी जरूरत होती है।

श्रीश—अच्छा, यह विचार पीछे होगा। पर मेरा वह रूमाल क्या हुआ? उसे चुराकर जब मैं अपना परलोक नष्ट कर चुका हूँ, तब उस रूमालको ही नहीं खो सकता! (जेबसे निकालकर) यह लीजिए, मैं एक दर्जन रेशमी रूमाल ले आया हूँ, इनके साथ उसे बदलना होगा! ये सब रूमाल उसके उपयुक्त मूल्य हैं, यह मैं नहीं कह सकता—उसका उपयुक्त मूल्य देनेके लिये तो चीन और जापानको उजाड़ डालना होगा।

शैल—महाशय, आपका यह छल समझनेकी बुद्धि विधाताने मुझे दी है। यह उपहार मेरे लिये नहीं आया है—जिनका रूमाल आपने चुराया है, उन्हें मेरी आड़में ये—

श्रीश—अबलाकान्त बाबू, भगवान्ने आपको बुद्धि तो यथेष्ट दी है, पर दयाका भाग आपमें कुछ कम दिखलाई दे रहा है—इस हतभाग्यको रूमाल फिरा देनेसे वह कलङ्क बिल्कुल धुल जायगा।

शैल—अच्छा, मैं दयाका परिचय देता हूँ—पर आपने सभाके लिये जो प्रबन्ध लिखनेका वचन दिया है वह आपको लिख देना होगा।

श्रीश—जरूर लिखूँगा—रूमाल वापस पानेसे ही काममें मन लगा सकूँगा—तब अन्य सन्धान छोड़कर केवल सत्यानुसन्धान कर सकूँगा।

(कमरेके किसी दूसरे स्थानमें)

विपिन—समझे रसिक बाबू, मैं गीतोंके सम्बन्धमें उनका निर्वाचन-चातुर्य देखकर चकित रह गया हूँ। जिसने गीत रचे हैं उसमें कवित्व शक्ति अवश्य होगी, पर इस गीत-निर्वाचनमें जिस कवित्वका परिचय मिला है, उसमें एक अनुपम सौकुमार्य वर्तमान है।

रसिक—आप ठीक कहते हैं। निर्वाचनकी क्षमता ही तो क्षमता कही जा सकती है। लतामें फूल तो स्वयं खिलते हैं, पर जो व्यक्ति फूल बीनकर माला गूँथता है, निपुणता और सुरुचि उसीकी कही जाती है।

विपिन—आपको वह गीत याद है?—

नैया मेरी डूब गई है भाई!
किस भीषण प्रस्तरसे वह टकराई!
नई नावकी चाल निराली,
नहीं बीच जलमें है डाली;
डरकर एक किनारेसे वह जाती आज बहाई।
नैया मेरी डूब गई है भाई!
बहा ले गई थी खर धारा,
कर्णधार था मैं बेचारा;
मृदुल पवनके मन्द झकोरे बहते थे सुखदाई।
नैया मेरी डूब गई है भाई!
नहीं हाय भय था कुछ मनमें,
मेघ नहीं थे कहीं गगनमें;
नाव लगेगी कुसुमित वनमें, यह थी आस समाई।
नैया मेरी डूब गई है भाई!

रसिक—डूब जाने दीजिए। क्यों विपिन बाबू, आपकी क्या राय है?

विपिन—डूब जाय! पर कहाँ डूबी, इसका ठिकाना मालूम होना चाहिए। अच्छा रसिक बाबू, यह गीत उन्होंने उस किताबमें क्यों लिख रक्खा है?

रसिक—स्त्री-हृदयका रहस्य ब्रह्मा भी नहीं समझते, यह कहावत प्रसिद्ध है। फिर रसिक बाबू तो तुच्छ जीव है।

श्रीश—(निकट आकर) विपिन, तुम एक बार चन्द्र बाबूके पास हो आओ! सचमुच हम लोगोंने अपने कर्त्तव्यमें ढील की है—उनके साथ कुछ आलोचना करनेसे वह खुश हो जायँगे।

विपिन—अच्छा। (प्रस्थान)

श्रीश—हाँ, आप उस वक्त सिलाईकी बात कहते थे,—वह शायद अपने ही हाथसे घरके सब काम करती हैं?

रसिक—सभी। इसमें सन्देह नहीं।

श्रीश—आपने शायद उस दिन देखा कि उनकी गोदमें तकिएका खोल पड़ा है और वह—

रसिक—सिर झुकाकर सुईमें तागा डाल रही थीं।

श्रीश—सुईमें तागा डाल रही थीं। उस वक्त शायद वह स्नान करके आई होंगी?

रसिक—तीन बजे दिनका समय होगा।

श्रीश—दिनके तीन बजे? वह शायद अपनी चारपाईके ऊपर बैठकर—

रसिक—नहीं, चारपाईके ऊपर नहीं—बरामदेमें चटाई बिछाकर—

श्रीश—बरामदेमें चटाई बिछाकर बैठे बैठे सुईमें तागा डाल रही थीं—

रसिक—हाँ सुईमें तागा डाल रही थीं। (आप-ही-आप) बड़ी आफ़त है!

श्रीश—मैं तसवीरकी तरह साफ़ देख रहा हूँ—दोनों पाँव फैलाए हुए हैं, सिर झुका हुआ है, बिखरे हुए बाल मुँहके ऊपर आए हुए हैं—तीसरे पहरकी रोशनी—

विपिन—(निकट जाकर) चन्द्र बाबू तुम्हारे साथ उस प्रबन्धके सम्बन्धमें बातें करना चाहते हैं। (श्रीशका प्रस्थान।) रसिक बाबू!

रसिक—(आप-ही-आप) अब और कितना बकूँ?

(एक दूसरे कोनेमें)

निर्मला—(पूर्णसे) आपकी तबीयत शायद आज अच्छी नहीं है!

पूर्ण—नहीं, ठीक है। हाँ, कुछ यह जरूर हो गया है—ऐसी कुछ खास बात नहीं है—फिर भी कुछ यह हो गया है—कुछ ठीक—(खाँसी) आपकी तबीयत तो अच्छी है?

निर्मला—जी हाँ।

पूर्ण—आपने—मैं कहता था कि आपने—आपने—आपको वह कैसा मालूम दिया—वह—क्या नाम—हाँ वह मिल्टनका एरियोपेजीटिका—वह हमारे एम० ए० के कोर्समें है, वह आपको—क्या नाम—खूब, क्या नाम—अच्छा मालूम नहीं देता?

निर्मला—मैंने वह नहीं पढ़ा!

पूर्ण—पढ़ा नहीं? (निस्तब्ध) आजकल—क्या नाम—आप—अबकी बड़ी गरमी पड़ी है—मैं ज़रा रसिक बाबू—रसिक बाबूसे मेरा कुछ काम है। (निर्मलाके पाससे जाता है।)

(कमरेके एक दूसरे कोनेमें)

विपिन—रसिक बाबू, आपका क्या ख्याल है? वह गीत उन्होंने कुछ ख़ास बात सोचकर ही लिखा है?

रसिक—सम्भव है। आपने तो मुझे बड़े चक्करमें डाल दिया। पहले मैंने यह बात नहीं सोची थी!

विपिन—

नैया मेरी डूब गई है भाई!
किस भीषण प्रस्तरसे वह टकराई!

अच्छा रसिक बाबू, यहाँपर नैयासे किसका बोध होता है?

रसिक—हृदयका बोध होता है, इसमें सन्देह नहीं। पर यह पाषाण कहाँ है और क्या है, यही सोचनेकी बात है!

पूर्ण—(निकट जाकर) विपिन बाबू, माफ़ कीजिए—रसिक बाबूसे मुझे कुछ बातें करनी हैं—अगर—

विपिन—बहुत अच्छी बात है, आप बातें कीजिए, मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

पूर्ण—मेरे समान मूर्ख संसारमें कोई नहीं है रसिक बाबू!

रसिक—आपसे भी बढ़कर अनेक मूर्ख ऐसे हैं जो अपनेको बुद्धिमान् समझते हैं, जैसे मैं।

पूर्ण—किसी एकान्त स्थानमें आपसे बहुत बातें करनी हैं। सभा विसर्जित होनेपर रातको आप कुछ फुर्सतका वक्त निकाल सकेंगे?

रसिक—अच्छी बात है।

पूर्ण—आज ख़ूब मजेकी चाँदनी छिटकेगी। गोलदिग्घीके पास—क्यों?

रसिक—(आप-ही-आप) कैसी आफ़त है !

श्रीश—(निकट आकर) ओः पूर्ण बाबू बातें कर रहे हैं ! खैर, इस वक्त रहने दीजिए। रातके वक्त आपको फ़ुर्सत होगी रसिक बाबू ?

रसिक—हो सकती है।

श्रीश—तो कलकी तरह—क्यों ? आप कल देखते ही थे, घरकी अपेक्षा बाहर रास्तेपर अच्छी जमती है।

रसिक—इसमें क्या शक ! (आप ही आप) सर्दी जमती है, खाँसी जमती है और गलेकी आवाज दहीकी तरह जम जाती है।

(श्रीशका प्रस्थान)

पूर्ण—अच्छा रसिक बाबू, आप होते तो किस तरह बातें शुरू करते ?

रसिक—शायद कहता—उस दिन बेलून उड़ा था, अपने मकानके छतसे आपने क्या उसे देखा था ?

पूर्ण—वह अगर कहतीं, हाँ देखा था—

रसिक—मैं कहता, मनको उड़नेका अधिकार दिया है, इसी ख्यालसे ईश्वरने मनुष्यको पङ्ख नहीं दिए हैं—शरीरको बद्ध रखकर विधाताने मनका हौसला बढ़ा दिया है।

पूर्ण—समझ गया हूँ रसिक बाबू,—यह कमाल है !—इस परसे अनेक बातें रची जा सकती हैं।

विपिन—(निकट आकर) पूर्ण बाबूके साथ बातें हो रही हैं। खैर, तो हम लोगोंकी बातें आज रात होंगी, आपकी क्या राय है ?

रसिक—यही ठीक रहेगा।

विपिन—चाँदनीमें टहलते-टहलते खूब आरामसे—क्यों !

रसिक—खूब आरामसे। (आप-ही-आप) पर 'हाय राम' इसके बाद!

शैल—(निर्मलासे) अच्छी बात है। आपकी इच्छा है तो मैं भी इस सम्बन्धमें आलोचना करके देखूँगी। मैंने डाक्टरी थोड़ीसी सीखी है—बहुत नहीं—पर मेरे सहयोगसे अगर आपका उत्साह बढ़ता है तो मैं तैयार हूँ।

(अन्यत्र)

पूर्ण—(निकट आकर) उस दिन जो बेलून उड़ा था उसे क्या आपने छत परसे देखा था?

निर्मला—बेलून?

पूर्ण—हाँ बेलून। (सब निरुत्तर रहते हैं) रसिक बाबू कहते थे कि आपने शायद देखा होगा—मुझे माफ़ कीजिएगा—आप लोगोंकी आलोचनामें मैंने बाधा डाली—मैं हतभाग्य हूँ।

१२

पुरबाला पहले दिन अपनी माताके साथ काशीसे लौट आई है।

अक्षयने कहा—देवि, अगर अभय दो तो एक प्रश्न करूँ।

पुरबाला—क्या प्रश्न है, जरा सुनूँ तो!

अक्षय—श्रीअङ्गकी कृशताका तो कोई लक्षण नहीं दिखलाई देता।

पुरबाला—श्रीअङ्ग कृश होनेके लिये तो पछाँहकी तरफ़ गया नहीं था।

अक्षय—तब क्या विरहवेदनाकी बात महाकवि कालिदासके साथ ही सती हो गई है?

पुरबाला—इसके प्रमाण तुम्हीं हो। तुम्हारे स्वास्थ्यमें भी तो कोई फ़रक़ नहीं दिखलाई देता !

अक्षय—होने कहाँ दिया ? तुम्हारी तीनों बहनें मिलकर अहरह मेरी कृशता हरण किया करती थीं। विरह किसे कहते हैं, यह अनुभव करनेका मौक़ा ही उन्होंने किसी तरह नहीं आने दिया।

विरह-व्यथासे प्राण तजूँगा, यह था मेरा प्रण,
किसने बाँध भुजाओंसे निज, किया मुझे वारण !
सोचा था आँसूके जलमें—
डूबूँगा सागरके तलमें;
किसकी सोनेकी नैयासे हुआ हाय, तारण ?

प्रिये, काशीधाममें शायद पञ्चबाण त्रिलोचनके भयसे छुपे रहते हैं ?

पुरबाला—सम्भव है—पर कलकत्तेमें तो उनका आना-जाना जारी रहता है ?

अक्षय—रहता तो है। गवर्नमेण्टका शासन वह नहीं मानते, इसका प्रमाण मुझे मिल गया है।

नृप और नीरका प्रवेश।

नीर—दीदी !

अक्षय—अब दीदीके सिवा दूसरी बात नहीं है ! अरी अकृतज्ञ ! दीदी जब विरह-दहनसे तपाए सोनेकी तरह उत्तरोत्तर श्री धारण कर रही थीं, तब तुम लोगोंको सुशीतल कर रक्खा था किसने ?

नीर—सुनती हो दीदी ! कितने झूठे हैं ! तुम जब तक नहीं थीं, तब तक हम लोगोंसे एक बार भी बुलाकर नहीं पूछा कि तुम कैसी हो। सिर्फ़ चिट्ठी लिखा करते थे और मेज़पर दोनों पाँव फैलाकर किताब हाथमें

लिये पढ़ा करते थे। अब तुम आ गई हो, इसलिए हमारे सम्बन्धमें गीत गाए जायेंगे, दिल्लगी होगी, और यह दिखलावेंगे मानो—

नृप—दीदी, तुमने भी तो भाई आज तक एक भी चिट्ठी हमारे लिये नहीं लिखी !

पुरबाला—मुझे क्या फुर्सत थी ? अम्माँको लेकर दिन-रात व्यस्त रहना पड़ता था।

अक्षय—अगर यह कह देतीं कि तुम्हारे जिज्जाके ध्यानमें निमग्न रहती थी, तो क्या लोग निन्दा करते ?

नीर—तब तो जिज्जाकी ढिठाई और बढ़ जाती ! जिज्जाजी, अपने बैठकके कमरेमें जाओ न ! दीदी इतने दिनोंके बाद आई हैं, हम क्या उनके साथ गप-शप भी न करने पावेंगी ?

अक्षय—नृशंसे, अपनी विरह-दाव-दग्धा दीदीको क्या तुम अभी और भी विरह-ज्वालासे जलाना चाहती हो ? तुम्हारा भगिनी-पति-रूपी घनकृष्ण मेघ मिलन-रूपी मूसलधार जल-वर्षणद्वारा प्रियाके चित्त-रूपी लता-निकुञ्जमें आनन्द-रूपी किशलयोद्गम करके प्रेम-रूपी वर्षा-ऋतुमें कटाक्ष-रूपी विद्युत्—

नीर—और बकझक-रूपी भेक-कलरव—

शैलका प्रवेश।

अक्षय—आओ आओ—उत्तमाधममध्यमा, इन तीन सालियोंके न होनेसे मेरा—

नीर—उत्तम मध्यम नहीं होता।

शैल—(नृप और नीरसे) भाई, तुम दोनों जरा यहाँसे चली तो जाओ, मुझे कुछ कहना है।

अक्षय—इन्हें क्या कहना है, सो समझती हो न नीरू ! निश्चय ही वह हरिनामकी बात तो नहीं है ।

नीर—अच्छा, रहने दीजिए, आप बकवाद मत कीजिए ।

(नृप और नीरका प्रस्थान ।)

शैल—दीदी, तो अम्माँने नृप और नीरके लिये दो वर ढूँढ लिए !

पुर—हाँ, बात एक तरहसे पक्की हो गई है । सुनती हूँ, लड़के बुरे नहीं हैं—वे लड़कियोंको देखकर पसन्द करना चाहते हैं । पसन्द होने पर सब ठीक हो जायगा ।

शैल—अगर पसन्द न हों ?

पुर—तो कहना होगा कि उनका भाग्य अच्छा नहीं है ।

अक्षय—और मेरी सालियोंका भाग्य अच्छा है ।

शैल—और यदि नृप और नीरू पसन्द न करें तो !

अक्षय—तो उनकी रुचिकी प्रशंसा करनी होगी ।

पुर—पसन्द कैसे नहीं करेंगी ? तुम लोगोंकी यह सब ज्यादती है । स्वयम्बरके दिन अब गए । लड़कियोंको वर पसन्द करनेकी आवश्यकता अब नहीं रही—पति होनेसे ही वे उसे प्यार कर सकती हैं ।

अक्षय—यदि ऐसा न होता, तो तुम्हारे वर्तमान बहनोईकी कैसी दुर्दशा होती शैल !

जगत्तारिणीका प्रवेश ।

जगत्—बेटा, अब उन दोनों लड़कोंको खबर दे देनी चाहिए, क्यों कि वे हमारे मकानका पता नहीं जानते हैं ।

अक्षय—अच्छी बात है अम्माँजी, रसिक दादाको भेजे देता हूँ ।

जगत—भला भला ! तुम्हारे रसिक दादाकी बुद्धि भी क्या खूब है ! वह किसके बदले किसे लाकर खड़ा कर देंगे, इसका कुछ ठिकाना है !

पुर—अम्माँ, तुम कुछ चिन्ता न करो। मैं लड़कोंको यहाँ बुलवा लूँगी।

जगत्—बेटी पुरी, तू अगर ध्यान न देगी तो न बनेगा। आज कलके लड़कोंके साथ किस तरहका व्यवहार किया जाता है, यह मैं कुछ नहीं जानती।

अक्षय—(अलगसे) हाँ, इस विषयमें इसके हाथमें यश है। पुरीने अपनी अम्माँके लिये एक खासा दामाद जुटाकर अच्छा नाम कमा लिया है! आजकलके लड़कोंको किस तरह वशमें करना होता है, इस विद्यामें—

पुर—(अलगसे) आप हज़रत क्या आजकलके लड़के हैं?

जगत्—बेटी, तुम आपसमें सलाह कर लो। कायेत (कायस्थ) दीदी बैठी हैं, मैं उन्हें बिदा कर आऊँ!

शैल—अम्माँ, पहले ज़रा सोच लो—लड़कोंको अभी तक तुममेंसे किसीने देखा तक नहीं है,—फिर एकाएक—

जगत—सोचते-सोचते तो मेरी जिन्दगी खतम हो चुकी है, अब और नहीं सोच सकती।

अक्षय—सोच-विचार पीछे फ़ुर्सतसे किया जा सकता है, पहले काम तो हो ले!

जगत्—हाँ बेटा, शैलको जरा समझा तो दो! (प्रस्थान।)

पुर—शैल, तू फिजूल क्या सोच रही है? अम्माँने जब निश्चय कर लिया है, तो उन्हें कोई नहीं रोक सकता। विधाताके विधानमें मेरा पूरा विश्वास है भाई! जिसके साथ जिसका होनेवाला है, लाख चेष्टा करने पर भी वह होता ही है—टल नहीं सकता।

अक्षय—यह तो ठीक बात है—नहीं तो जिसके साथ जिसका होता है, उसके साथ न होकर किसी दूसरेके साथ होता!

पुर—क्या तर्क तुम करते हो, कुछ समझमें ही नहीं आता।

अक्षय—इसका कारण यह है कि मैं निर्बोध हूँ।

पुर—जाओ, अब नहा आओ और दिमाग ठण्डा कर आओ!

(प्रस्थान।)

रसिकका प्रवेश।

शैल—रसिक दादा, सुन तो चुके हो न सब? बड़ी आफ़त है।

रसिक—आफ़त किस बातकी? कुमार-सभाका भी कौमार्य रह गया और नृप-नीरू भी पार लग गई, सब तरफ़से रक्षा हो गई।

शैल—किसी तरफ़से भी रक्षा नहीं हुई।

रसिक—कमसे कम इस बूढ़ेकी तो रक्षा हो गई—दो कमबक्त छोकरोंके साथ रास्तेमें खड़े होकर रातके वक्त श्लोकोंकी आवृत्ति तो न करनी पड़ेगी!

शैल—जिज्जाजी, तुम्हारे सिवा रसिक दादा किसीका शासन नहीं मानते, हम लोगोंकी बात तो बिल्कुल ही नहीं मानते हैं।

अक्षय—जिस उम्रमें तुम लोगोंकी बात वेद-वाक्य समझकर मानी जाती है, वह उम्र बीत चुकी है न, इसी लिये यह विद्रोह करनेका साहस कर रहे हैं। अच्छा, मैं ठीक किए देता हूँ। चलो रसिक दादा, बाहर बैठकके कमरेमें चलकर तमाखूका सेवन किया जाय।

१३

उस्तादजी बैठे हैं। तम्बूरा हाथमें लेकर विपिन बेसुरे गलेसे स-र-ग-म-साधना कर रहा है। भृत्यने आकर खबर दी—एक बाबू आए हैं।

विपिन—बाबू ? कैसे बाबू हैं ?

नौकर—बूढ़े आदमी हैं।

विपिन—गञ्जा सिर है ?

नौकर—हाँ।

विपिन—(तम्बूरा रखकर) बुला ला, फ़ौरन बुला ला ! अरे तमाखू ले आना ! बेहरा कहाँ गया, पङ्खा खींचनेको कह दे। और देख झटसे कुछ बढ़िया पान तैयार करा ला। देर न करना और आध सेर बरफ़ भी लेते आना, समझा ? (पाँवोंकी आहट सुनकर) आइए, रसिक बाबू, तशरीफ़ लाइए।

वनमालीका प्रवेश।

विपिन—रसिक बाबू !—अरे यह तो वही वनमाली है !

वृद्ध—जी हाँ, मेरा नाम वनमाली भट्टाचार्य है।

विपिन—परिचयकी आवश्यकता नहीं है। मैं एक ज़रूरी काममें फँसा हूँ।

वनमाली—वे दो लड़कियाँ तो अब रक्खी नहीं जा सकतीं—वर भी बहुत मिल रहे हैं—

विपिन—सुनकर खुशी हुई—दे डालिए—

वनमाली—पर वे आप लोगोंके ही योग्य थीं—

विपिन—देखिए वनमाली बाबू, अभी आपने मुझे पहचाना नहीं है—अगर एक बार पहचान जायँ, तो मेरी योग्यताके सम्बन्धमें आपको भयङ्कर सन्देह होगा !

वन—तो मैं जाता हूँ, आप काममें लगे हैं, फिर कभी आऊँगा।

विपिन—(तम्बूरा लेकर) सारे गा, रेगामा, गामापा,—

श्रीशका प्रवेश ।

श्रीश—क्यों विपिन, यह क्या ? कुश्ती छोड़कर अब गानेके पीछे पड़ गए ?

विपिन—(उस्तादसे) उस्तादजी, आज छुट्टी दीजिए। कल शामको आइएगा। (उस्तादका प्रस्थान।) क्या करूँ बतलाओ, गाना न सीखनेसे तो तुम्हारे सन्यासी-दलमें भर्ती नहीं हो सकूँगा।

श्रीश—अच्छा, तुम तो स्वर-साधनमें लगे हो, कुमार-सभाके उस लेखका भी कुछ ख्याल है ?

विपिन—नहीं भाई, उसमें तो मैं अभी हाथ भी नहीं लगा सका हूँ। तुम लिख चुके हो क्या ?

श्रीश—नहीं, मेरा भी यही हाल है। (कुछ देर तक चुप रहकर) नहीं भाई, यह ठीक नहीं हो रहा है। हम लोग धीरे-धीरे अपने सङ्कल्पसे विचलित होते जाते हैं।

विपिन—अनेक सङ्कल्प मेंढ़कके बच्चेकी दुमकी तरह होते हैं—परिणतिके साथ-ही-साथ अपने आप अन्तर्द्धान हो जाते हैं। अगर दुम ही रह जाती और मेंढ़क सूखकर गायब हो जाता, तो कैसा होता ? किसी समय एक सङ्कल्प किया था, इसके यह माने नहीं हैं कि उसकी खातिर अपनेको ही सुखाकर मार डालना चाहिए !

श्रीश—मैं यही माने समझता हूँ। अनेक सङ्कल्प ऐसे होते हैं जिनकी खातिर अपनेको सुखाकर मार डालना भी श्रेयस्कर है। न फलनेवाले वृक्षकी तरह हमारी डालियों और टहनियोंमें प्रतिदिन अतिरिक्त परिमाणमें रसका सञ्चार हो रहा है और सफलताकी आशा मानों प्रतिदिन दूर होती जाती है। भाई विपिन, मैंने भूल की थी—सभी बड़े कामोंके लिये तपस्या चाहिए। अपनेको अनेकानेक भोगोंसे वञ्चित न करनेसे, नाना अवस्थाओंमें प्रत्याहारका अभ्यास न करनेसे, चित्तको किसी महत् कार्यमें पूर्ण रूपसे नियुक्त नहीं किया जा सकता। अबसे मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि रस-चर्चा बिलकुल त्यागकर कठिन काममें हाथ डालूँगा।

विपिन—तुम्हारी बात मानता हूँ। पर सभी तृणोंमें तो धान नहीं फलते—सूखनेकी चेष्टा करनेसे केवल सूखकर मरना ही होगा, फल कुछ नहीं होगा। कुछ दिनोंसे मेरे मनमें यह विचार पैदा हो रहा है कि हम लोगोंने जो सङ्कल्प ग्रहण किया है, वह हम लोगोंसे सफल नहीं हो सकता—इसलिये हमें अपने स्वभावसाध्य अन्य किसी पथका अवलम्बन करना ही श्रेयस्कर है।

श्रीश—यह किसी कामकी बात नहीं है। विपिन, तुम अपना तम्बूरा फेंक दो।

विपिन—अच्छा फेंक दूँगा, उससे पृथ्वीका कोई नुकसान नहीं होगा।

श्रीश—चन्द्र बाबूके मकानमें फिरसे सभा ले जाई जाय।

विपिन—अच्छी बात है।

श्रीश—हम दो जनें मिलकर रसिक बाबूको संयत कर रक्खें।

विपिन—पर कहीं वह अकेले ही हम दो जनोंको असंयत न कर बैठें !

द्वितीय भृत्यका प्रवेश ।

भृत्य—एक बूढ़े बाबू आए हैं ।

विपिन—बूढ़े ? बड़ी आफ़त है ! वनमाली फिर आ गया है !

श्रीश—वनमाली ! वह तो कुछ ही देर पहले मेरे पास भी आया था ।

विपिन—अरे, उस बूढ़ेको बिदा कर दे !

श्रीश—तुम बिदा करोगे, तो वह मेरी गर्दनपर सवार हो जायगा। इससे बेहतर यह होगा कि वह बुला लावे और हम दोनों जने मिलकर उसे बिदा कर दें । (नौकरसे) बूढ़ेको ले आ !

रसिकका प्रवेश ।

विपिन—यह क्या ! यह तो वनमाली नहीं रसिक बाबू हैं !

रसिक—जी हाँ,—आप लोग पहचाननेमें गजब ढा देते हैं !—मैं वनमाली नहीं हूँ—। धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली—

श्रीश—नहीं रसिक बाबू, अब बस कीजिए—हम लोगोंने रसालाप बन्द कर दिया है !

रसिक—अच्छा हुआ, पिण्ड छूटा !

श्रीश—और सब आलोचनाओंको छोड़कर अबसे हम लोग दत्त-चित्त होकर कुमार-सभाके काममें लग जायँगे ।

रसिक—मेरी भी यही इच्छा है ।

श्रीश—वनमाली नामका एक बूढ़ा आदमी कुम्हारटोलेके नीलमाधव चौधरीकी दो लड़कियोंके साथ हमारे विवाहका प्रस्ताव लेकर आया था ।

हमने उसे संक्षेपमें सब बातें समझाकर विदा कर दिया है। ये सब प्रसङ्ग भी अब हमें असङ्गत जान पड़ते हैं।

रसिक—मुझे भी। वनमाली अगर दो या इससे भी ज्यादा कन्याओंके विवाहका प्रस्ताव लेकर मेरे पास उपस्थित होते, तो बहुत सम्भव है उन्हें निष्फल होकर ही वापस जाना पड़ता!

विपिन—रसिक बाबू, कुछ जलपान करके जाइएगा!

रसिक—नहीं साहब, आज रहने दीजिए। आप लोगोंसे कुछ विशेष बातें करनी थीं, पर आप लोगोंकी कठिन प्रतिज्ञाकी बात सुनकर अब साहस नहीं होता है।

विपिन—(आग्रहके साथ) नहीं, नहीं, हमारी प्रतिज्ञाके कारण क्या आप अपनी बात नहीं कहने पावेंगे?

श्रीश—आप हमें जितना भयङ्कर समझे हैं, हम उतने नहीं हैं। बात क्या आप ख़ास करके मेरे साथ करना चाहते हैं?

विपिन—नहीं, उस दिन रसिक बाबूने कहा था कि मेरे ही साथ वह दो एक विषयोंकी आलोचना करना चाहते हैं।

रसिक—रहने दीजिए, क्या करना है!

श्रीश—अगर कहें तो आज रात गोलदिग्घीके किनारे।

रसिक—नहीं, श्रीश बाबू, माफ़ कीजिए।

श्रीश—विपिन, तुम जरा दूसरे कमरेमें जाओ न, शायद तुम्हारे सामने रसिक बाबू—

रसिक—नहीं, नहीं, कुछ ऐसी जरूरी बात नहीं है।

विपिन—इससे यह अच्छा होगा कि हम तीसरे मञ्जिलवाले कमरेमें चले चलें, रसिक बाबू—श्रीश जरा देरके लिये यहीं टिके रहेंगे।

रसिक—नहीं, आप दोनों जने बैठे रहिए, मैं जाता हूँ।

विपिन—वाह, यह भी कोई बात है! आपको कुछ खाकर जाना होगा।

श्रीश—नहीं, मैं आपको किसी तरह न छोड़ूँगा। यह नहीं होगा।

रसिक—अच्छा, तो वह बात कहता हूँ। नृपबाला और नीरबालाके सम्बन्धमें तो आप लोग पहलेहीसे बहुतसी बातें सुन चुके हैं—

श्रीश—सुन चुके हैं, इसमें क्या शक! यदि नृपबालाके सम्बन्धमें कोई बात—

विपिन—यदि नीरबालाके सम्बन्धमें कोई विशेष संवाद—

रसिक—उन दोनोंके ही सम्बन्धमें विशेष चिन्ताका कारण उपस्थित हो गया है।

दोनों—तबीयत तो खराब नहीं है?

रसिक—इससे भी विशेष चिन्ताका कारण है। उनके विवाहका सम्बन्ध—

श्रीश—आप कहते क्या हैं? विवाहकी तो कोई बात सुननेमें नहीं आई थी—

रसिक—कुछ नहीं—उनकी अम्माँने काशीसे आकर अकस्मात् दो निकम्मोंके साथ उन दोनोंका विवाह कर देनेका निश्चय कर लिया है—

विपिन—यह तो किसी तरह नहीं हो सकता, रसिक बाबू!

रसिक—जनाब पृथ्वीमें जो कुछ अप्रिय होता है, उसीकी सम्भावना अधिक होती है। फूलके पेड़ोंकी अपेक्षा निकम्मे घास-फूसकी ही अधिकता रहती है।

विपिन—पर साहब, घास-फूसको उखाड़कर फेंक देना चाहिए—

श्रीश—फूलोंके पेड़ लगाए जाने चाहिए—

रसिक—यह तो ठीक है, पर यह सब करे कौन ?

श्रीश—हम करेंगे, क्यों विपिन ?

विपिन—अवश्य।

रसिक—पर क्या कीजिएगा ?

विपिन—अगर आप कहें, तो उन दोनों लड़कोंको रास्तेमें ही—

रसिक—समझ गया हूँ। यह बात सोचनेसे ही शरीर पुलकित होता है। पर विधाताके वरसे अपात्र नामकी वस्तु अमर है—उन दोके जाने पर दस और आ जायँगे।

विपिन—उन दोनोंको अगर छल-बलसे कुछ दिन तक रोके रहें, तो पीछे सोचनेका समय मिल जायगा।

रसिक—सोचनेका समय भी सङ्कीर्ण हो आया है। इसी शुक्रवारको वे लोग लड़कियोंको देखने आयँगे।

विपिन—इसी शुक्रवारको ?

श्रीश—शुक्रवार तो परसों है।

रसिक—जी हाँ, परसों ही तो है—शुक्रवार तो किसी तरह रास्तेमें रोका नहीं जा सकता।

श्रीश—अच्छा, मेरे दिमागमें एक प्लान उठा है।

रसिक—कहिए।

श्रीश—उन लड़कोंको घरका कोई पचहानता है ?

रसिक—नहीं।

श्रीश—उन लोगोंने मकान देखा है ?

रसिक—नहीं।

श्रीश—तो विपिन अगर उस दिन उन लोगोंको किसी प्रकार रोक रक्खे, तो मैं उन लोगोंका नाम लेकर नृपबालाको—

विपिन—तुम तो जानते ही हो भाई कि मैं कोई कौशल नहीं जानता—पर यदि तुम चाहोगे, तो छल-बल-कौशलसे उन दोनों लड़कोंको रोककर रख सकोगे—और मैं बल्कि अपने आपको उन लोगोंके नामसे चलाकर नीरबालाको—

रसिक—पर साहब, यहाँ पर तो 'आदरार्थे बहुवचन' नहीं चलेगा—दो लड़कोंके आनेकी बात है, आप लोगोंमेंसे एक आदमीको दो आदमी बतलाकर चलाना मेरे लिये कठिन होगा—

श्रीश—हाँ, यह बात तो है !

विपिन—हाँ, यह बात तो हम लोग भूल ही गए थे।

श्रीश—तब तो हम दोनोंको ही जाना होगा। पर—

रसिक—उन दोनोंको गलत रास्ता तो मैं ही बतला दूँगा, पर आप लोग—

विपिन—हमारे लिये चिन्ता न कीजिएगा रसिक बाबू।

श्रीश—हम लोग सभी बातोंमें राजी हैं।

रसिक—आप लोग महत् हैं—इस प्रकारका त्याग स्वीकार—

श्रीश—आप गजब करते हैं ! इसमें तो त्यागकी कोई बात ही नहीं है !

विपिन—यह तो आनन्दकी बात है !

रसिक—नहीं, नहीं, फिर भी आपके मनमें यह आशङ्का तो हो सकती है कि, कहीं अपने जालमें हम स्वयं ही न फँस जायँ।

श्रीश—कुछ नहीं साहब, हम किसी बातसे नहीं डरते।

विपिन—हम लोगोंपर चाहे जो बीते, हम उसीमें खुश रहेंगे ।

रसिक—यह तो आप लोगोंके बड़प्पनकी बात है, पर मेरा कर्त्तव्य आप लोगोंकी रक्षा करना है । मैं आप लोगोंको विश्वास दिलाकर कहता हूँ कि इस शुक्रवारके दिनकों आप लोग किसी तरह उद्धार कर दें, इसके बाद फिर कभी आप लोगोंको तङ्ग नहीं किया जायगा। आप लोग सम्पूर्ण स्वाधीन हो जायँगे—और हम लोग भी इस बीचमें खोजखाजकर कोई और दो योग्य वर जुटानेकी चेष्टा करेंगे ।

श्रीश—आप हमें तङ्ग नहीं करेंगे, यह बात सुनकर दुःख हुआ रसिक बाबू !

रसिक—अच्छी बात है, तो करूँगा ।

विपिन—हम लोग क्या केवल अपनी स्वाधीनताके लिये ही मरते हैं ? हमें क्या आप इतना स्वार्थी समझते हैं ?

रसिक—माफ़ कीजिएगा—मैं भूल कर रहा था ।

श्रीश—आप कुछ भी कहिए, पर एकदमसे कोई अच्छा वर तो नहीं मिल सकता ।

रसिक—इसीलिये तो इतने दिनों तक ठहरने पर भी आखिरको यह आफ़त सिरपर आ पड़ी है । मैं जानता हूँ कि विवाहका प्रसङ्ग ही आप लोगोंके लिये अप्रिय है; फिर भी आप लोगोंको—

विपिन—इसके लिये कोई सङ्कोच न कीजिए—

श्रीश—आप और किसीके पास न जाकर सीधे हमारे ही पास चले आए हैं, इसके लिये हम आपको आन्तरिक धन्यवाद देते हैं !

रसिक—और मैं आप लोगोंको धन्यवाद नहीं दूँगा ! उन दो कन्याओंके समस्त जीवनका आशीर्वाद आप लोगोंको पुरस्कृत करेगा ।

विपिन—अरे पङ्खा खींच !

श्रीश—रसिक बाबूके लिये जलपान—

विपिन—वह अभी आता है ! तब तक एक गिलास बरफका पानी पीजिए—

श्रीश—पानी क्यों, लेमनेड मँगाओ न ! (जेबसे टिनकी डिबिया निकालकर) यह लीजिए रसिक बाबू, पान खाइए !

विपिन—वहाँ हवा मालूम दे रही है या नहीं ? यह तकिया लीजिए न !

श्रीश—अच्छा रसिक बाबू नृपबाला क्या बहुत दुखी हो रही हैं ?

विपिन—नीरबाला भी अवश्य बहुत—

रसिक—कुछ पूछिए मत !

श्रीश—नृपबाला शायद रो रही होंगी ?

विपिन—अच्छा नीरबाला अपनी अम्माँसे समझाकर सब बात साफ़ क्यों नहीं कहतीं—

रसिक—(आप-ही-आप) यह फिर वही पुरानी बला शुरू हुई ! लेमनेडको मारिए गोली ! (प्रकटमें) माफ़ कीजिए, मुझे अभी कामसे जाना है।

श्रीश—आप कहते क्या हैं !

विपिन—वाह, यह भी कोई बात है !

रसिक—उन दो लड़कोंको गलत पता बतला आना होगा, नहीं तो—

श्रीश—ठीक है ! तब तो अभी जाइए !

बिपिन—तब तो देर न कीजिए !

१४

निर्मला खिड़कीके पास बैठी है ।

चन्द्र बाबूका प्रवेश ।

चन्द्र—(आप-ही-आप) निर्मलाने बड़ा कठिन व्रत ग्रहण किया है । मैं देख रहा हूँ, कुछ दिनोंसे वह चिन्तामग्न है; कोई स्त्री क्या कभी इतना मानसिक भार सह सकती है ? (प्रकटमें) निर्मल !

निर्मला—(चौंककर) क्या है मामा !

चन्द्र—शायद उस लेखके विषयमें सोच रही हो ! मेरी रायमें अधिक न सोचकर यदि मनको दो-एक दिनका विश्राम दोगी, तो लेख लिखनेमें आसानी होगी ।

निर्मला—(लज्जित होकर) मैं ऐसी कोई खास बात नहीं सोच रही थी मामा । अब तक वह लेख मैंने आरम्भ कर दिया होता, पर कुछ दिनोंसे बसन्ती हवा चलने लगी है और गरमी पड़ने लगी है, इसलिये किसी काममें मन नहीं लगा सकती हूँ—बहुत अनुचित हो रहा है, आज जिस तरहसे भी हो—

चन्द्र—नहीं, नहीं, जबर्दस्ती मन लगानेकी चेष्टा न करो । मुझे तो ऐसा जान पड़ता है निर्मल, कि घरमें कोई हमजोलीकी लड़की न होनेसे अकेले काम करनेमें तुम्हारा जी नहीं लगता । यदि काममें दो-एक साथी न हों तो—

निर्मला—अवलाकान्त बाबूने मुझे सहायता देनेका वचन दिया है—मैंने उन्हें रोगियोंकी शुश्रूषाके सम्बन्धमें एक अँगरेजी किताब दी है और उन्होंने आज उसका एक अध्याय लिख भेजनेका वचन दिया है—शायद अभी मिल जायगा, मैं उसीके इन्तजारमें हूँ ।

चन्द्र—वह बहुत अच्छा लड़का है—

निर्मला—बहुत ही अच्छे हैं—

चन्द—इतना अध्यवसाय, ऐसी कार्यतत्परता—

निर्मला—और ऐसा सुन्दर नम्र स्वभाव!

चन्द्र—अच्छा प्रस्ताव कोई भी हो, उसके प्रति उसका उत्साह देखकर मुझे आश्चर्य होता है।

निर्मला—इसके सिवा उन्हें देखते ही उनके मनका माधुर्य उनके चेहरेपर साफ़ झलक जाता है।

चन्द्र—इतने ही समयमें किसीके प्रति इतना गाढ़ स्नेह उत्पन्न हो सकता है, यह मैंने कभी नहीं सोचा—मेरी इच्छा होती है कि इस लड़केको अपने पास रक्खूँ और उसके लिखने-पढ़ने और दूसरे कामोंमें सहायता करूँ।

निर्मला—ऐसा होनेसे मेरा भी बड़ा उपकार होगा। मैं उनके साथमें बहुत काम कर सकूँगी। अच्छा, एक बार यह प्रस्ताव करके अन्दाज तो कर लो।—वह उनका नौकर आ रहा है। शायद उन्होंने अपना लेख भेजा होगा। रामदीन, चिट्ठी है क्या? इधर ले आ। (नौकरका प्रवेश। चन्द्र बाबूके हाथमें चिट्ठी देता है।) मामा, यह निश्चय ही वही लेख है। उन्होंने मेरे लिये भेजा होगा, मुझे दो!

चन्द्र—नहीं बेटी, यह मेरी चिट्ठी है।

निर्मला—तुम्हारी चिट्ठी है? अबलाकान्त बाबूने शायद तुम्हींको लिखा है। क्या लिखा है?

चन्द्र—नहीं, यह पूर्णकी चिट्ठी है।

निर्मला—पूर्ण बाबूकी चिट्ठी है? ओः!

चन्द्र—पूर्णने लिखा है—"गुरुदेव, आपका चरित्र महत् है; आपके मनका बल असामान्य है। आपके समान बलिष्ठ प्रकृतिके लोग ही मनुष्यकी दुर्बलताको क्षमाकी दृष्टिसे देख सकते हैं, यह सोचकर आज यह पत्र आपको लिखनेका साहस करता हूँ।"

निर्मला—क्या हुआ है? शायद पूर्ण बाबू—कुमार-सभा छोड़ देना चाहते हैं, इसी लिये उन्होंने यह भूमिका लिखी है। तुमने ख्याल किया होगा कि पूर्ण बाबू आजकल कुमार-सभाका कोई काम नहीं करते हैं।

चन्द्र—"देव, आपने जो आदर्श हम लोगोंके सामने रक्खा है, वह अत्युच्च है, जो उद्देश्य हमारे मस्तकमें स्थापित किया है वह गुरु-भार है—उस आदर्श और उस उद्देश्यके प्रति एक मुहूर्त्तके लिये भी हमारे भीतर भक्तिका अभाव नहीं हुआ, पर बीच बीचमें मुझे शक्तिकी दीनताका अनुभव हुआ करता है, यह बात मैं आपके चरणोंके निकट सविनय स्वीकार करता हूँ।"

निर्मला—मुझे ऐसा मालूम होता है कि सभी बड़े बड़े कामोंमें मनुष्य बीच बीचमें अपनी अक्षमताका अनुभव करके हताश हो जाता है—श्रान्त होकर कभी कभी विचलित हो जाता है; पर क्या यह भाव सब समय रहता है?

चन्द्र—"सभासे घर लौटकर जब काममें हाथ डालता हूँ तो अपनेको एकाकी अनुभव करता हूँ, उत्साह आश्रयहीन लताकी तरह लुण्ठित होकर नीचे गिर जाना चाहता है।" निर्मल, हम लोग भी तो ठीक यही बात कह रहे थे।

निर्मला—पूर्ण बाबूने जो कुछ लिखा है वह सच है—मनुष्यका सहयोग न होनेसे केवलमात्र सङ्कल्पसे उत्साह जागरित किए रहना कठिन होता है।

चन्द्र—" मेरी धृष्टता क्षमा कीजिएगा, पर अनेक चिन्ता करके मैं निश्चयपूर्वक यह बात समझ गया हूँ कि कुमार-व्रत साधारण व्यक्तिके लिये नहीं है,—उससे बल प्राप्त नहीं होता, परन्तु हरण होता है। स्त्री और पुरुष एक दूसरेके दक्षिण हस्त हैं—वे दोनों मिलित हों तभी सम्पूर्ण रूपसे संसारके सब कामोंके लिए उपयोगी हो सकते हैं।" निर्मल, तुम्हारा क्या ख्याल है ? (निर्मला निरुत्तर रहती है) अक्षय बाबू भी उस दिन यही बात लेकर मुझसे तर्क करते थे और उनकी अनेक बातोंका उत्तर मैं नहीं दे सका था।

निर्मला—जान पड़ता है, इस बातमें बहुत कुछ सत्य है।

चन्द्र—" गृहस्थ-सन्तानको संन्यासी धर्ममें दीक्षित न करके गृहाश्रमको उन्नत आदर्शमें गठित करना ही मेरी रायमें श्रेष्ठ कर्त्तव्य है।"

निर्मला—यह बात पूर्ण बाबूने बहुत अच्छी कही है।

चन्द्र—मैंने भी कुछ दिनोंसे सोचा है कि कुमार-व्रत ग्रहण करनेका नियम हटा दूँगा।

निर्मला—मेरी भी यही राय है कि उसे हटा देना बुरा नहीं है। क्यों मामा! क्या और कोई एतराज़ करेंगे ? अबलाकान्त बाबू, श्रीश बाबू—

चन्द्र—एतराज़का तो कोई कारण नहीं है।

निर्मला—फिर भी एक बार अबलाकान्त बाबू वगैरहकी राय ले लेनी चाहिए।

चन्द्र—राय तो लेनी ही होगी।—(पत्र पाठ करते हैं) " यहाँ तक जो बात मैंने लिखी है वह आसानीसे लिखी है; परन्तु अब जो कुछ कहना चाहता हूँ, उसे लिखनेके लिये क़लम नहीं चलती है।"

निर्मला—मामा, पूर्ण बाबू शायद कोई गुप्त बात लिख रहे हैं। तुम चिल्लाकर क्यों पढ़ते हो ?

चन्द्र—ठीक कह रही हो बेटी। (अपने मनमें पढ़ते हैं।) कैसा आश्चर्य है! मैं क्या सभी बातोंमें अन्धा हूँ! इतने दिनों तक तो मुझे कुछ भी मालूम नहीं हुआ! निर्मल, पूर्ण बाबूका कोई व्यवहार क्या कभी तुम्हें—

निर्मला—हाँ पूर्ण बाबूका व्यवहार मुझे कभी कभी अत्यन्त मूर्खतापूर्ण मालूम देता था।

चन्द्र—पर फिर भी पूर्ण बाबू बड़े बुद्धिमान् हैं। तो तुमसे साफ़-साफ़ कह देना उचित है—पूर्ण बाबूने विवाहका प्रस्ताव किया है—

निर्मला—तुम तो उनके अभिभावक नहीं हो। तुम्हारे निकट प्रस्ताव—

चन्द्र—मैं तुम्हारा तो अभिभावक हूँ—यह पढ़ देखो—

निर्मला—(पत्र पढ़कर लज्जित होकर) यह हो ही नहीं सकता।

चन्द्र—मैं उनसे क्या कहूँ ?

निर्मला—कहो कि यह किसी तरह नहीं हो सकता।

चन्द्र—क्यों निर्मल, तुम तो कहती थीं कि कुमारव्रत पालनका नियम सभासे हटा देनेमें तुम्हें कोई एतराज़ नहीं है।

निर्मला—तो मेरा मतलब यह थोड़े ही है कि जो कोई भी प्रस्ताव करेगा उसीको—

चन्द्र—पूर्ण बाबू तो कोई साधारण व्यक्ति नहीं है, इतना अच्छा लड़का—

निमला—मामा, तुम ये सब बातें नहीं समझ सकते। तुम्हें समझा भी नहीं सकूँगी। मुझे काम है। (जाना चाहती है।) मामा, तुम्हारी जेबमें वह क्या दिखलाई देता है ?

चन्द्र—(चौंककर) हाँ, हाँ, मैं तो भूल ही गया था—नौकर आज तुम्हारे नामका एक कागज मुझे दे गया था—

निर्मला—(जल्दीसे कागज़ लेकर) देखो तो मामा, तुमने कैसा अन्धेर किया! अबलाकान्त बाबूका लेख सुबह ही आ गया था, और तुमने मुझे अभी तक नहीं दिया! मैं सोचती थी वह भूल गए होंगे—बड़ी गल्ती हुई।

चन्द्र—गलती जरूर हुई! पर इससे भी बड़ी बड़ी भूलें मैं रोज किया करता हूँ,—तुम्हींने तो मुझे बार-बार हँसकर और माफ़ करके प्रश्रय दिया है बेटी!

निर्मला—नहीं, कुछ ऐसी गलती नहीं हुई। मैंने ही अबलाकान्त बाबूके प्रति मन-ही-मन अन्याय किया था। मैं सोच रही थी—अरे, रसिक बाबू आए हैं! आइए, मामा यहीं है।

रसिकका प्रवेश।

चन्द्र—रसिक बाबू आए हैं, अच्छा ही हुआ है।

रसिक—मेरे आनेसे ही अगर अच्छा होता है चन्द्र बाबू, तब तो आप लोगोंके लिये 'अच्छा' बड़ा सुलभ है। आप जब कहेंगे, तभी चला आ सकता हूँ; बल्कि न कहनेसे भी आ सकता हूँ।

चन्द्र—हम लोग विचार कर रहे हैं कि सभासे चिर-कुमार व्रतका नियम हटा दिया जाना चाहिए। आपकी क्या राय है?

रसिक—मैं बिल्कुल निःस्वार्थ भावसे राय दे सकता हूँ। कारण, आप यह व्रत रक्खें या न रक्खें, मेरे लिये दोनों समान हैं। मेरी राय है कि यह नियम हटा दिया जाना चाहिए, नहीं तो यह किसी दिन स्वयं हट जायगा। हमारे मोहल्लेके रामहरिने खूब शराब पीकर और रास्तेके बीच खड़े होकर सबको पुकारकर कहा था—बाबा लोगो, मैंने

निश्चय किया है कि मैं यहीं गिरूँगा! निश्चय न करने पर भी वह कहीं अवश्य गिरता, इसलिये निश्चय करके उसने अच्छा ही किया था!

चन्द्र—आपने ठीक कहा है रसिक बाबू। जो चीज बलपूर्वक आवेगी ही, उसे बल प्रकट न करने देकर आने देना ही अच्छा है। मैं आगामी रविवारके पहले ही यह प्रस्ताव सबके सामने पेश करना चाहता हूँ।

रसिक—अच्छा, शुक्रवारकी सन्ध्याको आप हमारे यहाँ आइएगा, मैं सबको खबर देकर बुला लूँगा।

चन्द्र—रसिक बाबू, आपको अगर फुर्सत हो, तो हमारे देशकी गो-जातिकी उन्नतिके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव आपको—

रसिक—विषय सुनकर खूब उत्सुकता उत्पन्न हो रही है, पर फुर्सत—

निर्मला—नहीं रसिक बाबू, आप उस कमरेमें चलिए, आपके साथ बहुत बातें करनी हैं। मामा, अपना लेख पूरा कर लो, हमारे यहाँ रहनेसे विघ्न होगा।

रसिक—तो चलिए।

निर्मला—(चलते चलते) अबलाकान्त बाबूने अपना वह लेख मेरे पास भेजा है। उन्होंने मेरी प्रार्थनापर ध्यान दिया है, इसके लिये आप उन्हें मेरी तरफ़से धन्यवाद दीजिएगा!

रसिक—धन्यवाद न मिलने पर भी आपकी प्रार्थनापर ध्यान देनेसे ही वह कृतार्थ हो गए हैं।

१५

जगत्तारिणी—बेटा अक्षय, देखो तो, इन लड़कियोंका मैं क्या उपाय करूँ! नृप बैठी बैठी रो रही है और नीर रूठी है, कहती है मैं किसी तरह बाहर नहीं निकलूँगी। भले घरके वे दो लड़के आज अभी आयेंगे, उन्हें किस तरहसे लौटाया जाय! तुम्हींने उन्हें लिखा पढ़ाकर मेम साहब बना डाला है, अब तुम्हीं उन्हें समझाओ!

पुरबाला—मैं भी उनके ढङ्ग देखकर दङ्ग रह गई हूँ। उन्होंने क्या यह समझ रक्खा है कि वे—

अक्षय—जान पड़ता है वे मेरे सिवा और किसीको पसन्द नहीं करतीं; तुम्हारी ही सहोदरा हैं कि नहीं; रुचि भी तुम्हारी ही जैसी है!

पुरबाला—हँसी रहने दो! यह हँसीका वक्त नहीं है—तुम उन्हें समझाओगे या नहीं, बतलाओ! तुम न समझाओगे, तो वे नहीं मानेंगी!

अक्षय—वे मेरी इतनी अनुगता हैं! इन्हींको तो कहते हैं—भगिनीपति-व्रता साली! अच्छा, एक बार उन्हें मेरे पास भेज दो!

(जगत्तारिणी और पुरबालाका प्रस्थान।)

नृप और नीरका प्रवेश।

नीर—नहीं जिज्जाजी, यह किसी तरह नहीं होगा!

नृप—जिज्जाजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, हमसे चाहे जिसके सामने इस तरह बाहर निकलनेको न कहो!

अक्षय—फाँसीका हुक्म होने पर एक आदमीने कहा था कि मुझे बहुत ऊँचे न चढ़ाओ, मुझे चक्कर आनेकी बीमारी है। तुम्हारा भी वही हाल है! जब ब्याह करने चली हो, तब बाहर निकलनेमें लाज करनेसे कैसे काम चलेगा!

नीर—कौन कहता है कि हम ब्याह करने जाती हैं?

अक्षय—अहो, शरीरमें पुलकका सञ्चार हो रहा है!—पर हृदय दुर्बल है और दैव बलवान्! अगर दैवयोगसे प्रतिज्ञा भङ्ग करनी पड़े—

नीर—नहीं, भङ्ग नहीं होगी!

अक्षय—नहीं होगी? तो निर्भय चली आना; दोनों युवकोंको दर्शन देकर और उन्हें अधजले करके छोड़ दो—अभागोंको घर लौटकर मरने दो!

नीर—बिना किसी कारणके प्राणी-हत्या करनेके लिये हमें उत्साह नहीं होता!

अक्षय—वाह! जीवके प्रति तुम्हारी असीम दया है! पर एक सामान्य कारणसे गृह-विच्छेद करनेसे क्या फायदा? तुम लोगोंकी अम्माँ और दीदी जब ज़ोर कर रही हैं और दोनों भद्र युवक भाड़ेकी गाड़ीमें आ रहे हैं, तब पाँच मिनटके लिये दर्शन दे जाना; इसके बाद मैं देख लूँगा—तुम्हारी अनिच्छासे विवाह नहीं होने पावेगा।

नीर—सच कहते हो?

अक्षय—हाँ बिल्कुल।

पुरबालाका प्रवेश।

पुर—आओ, तुम्हें सजा दूँ!

नीर—हमें नहीं सजना है!

पुर—भले आदमियोंके सामने इसी पहनावेमें बाहर आओगी? लाज नहीं आवेगी?

नीर—लाज तो आवेगी दीदी, पर सँवरकर निकलनेसे और भी ज्यादा लाज आवेगी।

अक्षय—उमाने तपस्विनीके वेशमें महादेवका मनोहरण किया था; शकुन्तलाने जब दुष्यन्तका हृदय हरण किया था, तब उसके शरीरपर एक बल्कल था और कालिदास कहते हैं कि वह भी कुछ ओछा हो गया था। तुम्हारी बहनें ये सब बातें पढ़कर सयानी हो गई हैं, इसलिये सँवरना नहीं चाहतीं हैं।

पुर—वे सब बातें सतजुगकी हैं। कलिकालके दुष्यन्त महाराजा साज-सज्जासे ही लुभाते हैं।

अक्षय—जैसे—

पुर—जैसे तुम। जिस दिन तुम मुझे देखने आए थे, उस दिन क्या अम्माँने मुझे नहीं सँवारा था?

अक्षय—मैंने मन-ही-मन सोचा था कि जब वेशभूषासे यह इतनी अच्छी दिखलाई देती है, तो सौन्दर्यसे न जाने कितनी अच्छी न दिखलाई देगी।

पुर—अच्छा, अब बस करो! नीरू, चल आ!

नीर—नहीं दीदी—

पुर—अच्छा साज न सही, बाल तो बँधवा ले!

अक्षय—(गाता है)

अलकोंमें न गूँथना फूल,
पर जूड़ा तुम बँधवा लेना,
हाय न जाना भूल!
काजलहीन सजल नयनोंसे
हृदयोंमें करना आघात,
आकुल अञ्चलसे फैलाना
जाल मृत्युका तुम दिन-रात!

जो कुछ जीमें आवे, करना
इच्छाके अनुकूल!
अलकोंमें न गूँथना फूल!

पुर—लो, तुम तो गाने लग गए! मैं अब क्या करूँ, बतलाओ तो! उनके आनेका समय हो गया और अभी तक मैंने खाना भी नहीं बनाया है। (नृप और नीरको लेकर जाती है।)

रसिकका प्रवेश।

अक्षय—पितामह भीष्म, युद्धकी सब तैयारियाँ हो चुकी हैं?

रसिक—सब हो चुकी हैं। दोनों वीर पुरुष भी उपस्थित हैं।

अक्षय—अब केवल दो दिव्यास्त्र सँवरनेके लिये गए हैं। तो अब तुम सेनापतिका भार ग्रहण करो, मैं नेपथ्यमें छिपे रहना चाहता हूँ।

रसिक—मैं भी पहले आड़में छिप रहता हूँ। (दोनोंका प्रस्थान।)

श्रीश और विपिनका प्रवेश।

श्रीश—विपिन, तुमने तो आजकल सङ्गीत-विद्याके ऊपर चीख-चिल्लाकर डकैती शुरू कर दी है—कुछ प्राप्त भी किया?

विपिन—कुछ भी नहीं! सङ्गीत-विद्याके द्वारपर सप्त सुर निरन्तर पहरा दे रहे हैं, वहाँ क्या मैं घुस सकता हूँ! पर यह प्रश्न तुम्हारे मनमें क्यों उदय हुआ?

श्रीश—आजकल कभी कभी कवितामें सुर बैठानेकी इच्छा होती है। उस दिन पढ़ रहा था—

विनभर बालूके तटपर क्यों
खेल रहे हो, हे उन्माद!
दिन तो ढलता आता है अब,
पड़ो निबिड़ जलमें तुम फाँद।

अतल छानकर
लौट चलो घर,
कभी सहर्ष, कभी सविषाद।

मुझे ऐसा मालूम दे रहा था कि जैसे मैं इसका सुर तो जानता हूँ, पर गा नहीं सकता!

विपिन—चीज बुरी नहीं है भाई, तुम्हारा कवि लिखता तो अच्छा है! क्यों, इसके बाद और कुछ नहीं है क्या? अगर शुरू कर दिया है, तो अब ख़तम भी करो!

श्रीश—

न जाने करके किसका ध्यान,
पड़ा है पथमें कौन अजान!
सुरभिसे जिसकी होकर मस्त
पवन करती है व्याकुल प्राण,
चलो अब करके नित्य उसी—
कुसुम-काननका कर सन्धान!

विपिन—वाह, बहुत अच्छी कविता है! पर श्रीश, तुम 'शेल्फ' के पास क्या खोजते फिर रहे हो?

श्रीश—उस दिन जिन किताबोंमें दो नाम लिखे देखे थे, वही—

विपिन—नहीं भाई, आज यह सब रहने दो!

श्रीश—क्या रहने दो!

विपिन—उनके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी—

श्रीश—तुम क्या बात कर रहे हो विपिन! उनके सम्बन्धमें मैं क्या कोई ऐसी आलोचना कर सकता हूँ जिससे—

विपिन—नाराज मत होओ भाई, मैं अपने सम्बन्धमें ही कह रहा हूँ। इसी कमरेमें मैंने रसिक बाबूके साथ उनके विषयमें जिस भावसे

बातें की हैं, आज उस भावसे कोई बात उच्चारण करनेमें भी सङ्कोच हो रहा है—समझे या नहीं—

श्रीश—क्यों नहीं समझूँगा ? मैंने तो केवल एक किताब खोलकर देखनेकी इच्छा की थी—उनके सम्बन्धमें कोई बात मैं मुँहसे न निकालता !

विपिन—नहीं, आज यह भी नहीं। आज वे हमारे सामने उपस्थित होंगी, आज हमें उनके योग्य बनना चाहिए !

श्रीश—विपिन, तुम्हारे साथ—

विपिन—नहीं भाई, मेरे साथ तर्क मत करो; मैंने हार मानी!—पर किताब रख दो !

रसिकका प्रवेश।

रसिक—आप लोग तो यहाँ अकेले बैठे हैं—कुछ ख्याल न कीजिएगा—

श्रीश—कुछ नहीं। इस कमरेने ही हमारा सादर स्वागत कर लिया था !

रसिक—आप लोगोंको कष्ट हुआ।

श्रीश—कष्ट आपने दिया कहाँ ? कष्ट कहलाने योग्य कोई कष्ट आप देते, तो हम अपनेको कृतार्थ समझते।

रसिक—कुछ भी हो, थोड़े ही समयमें सब झमेला चुक जायगा, यह एक बड़ा सुभीता है, फिर आप लोग स्वाधीन हैं। सोच देखिए। यदि यह वास्तविक व्यापार होता, तो 'परिणामे बन्धनभयम्' था ! विवाह मिष्टान्न द्वारा ही आरम्भ होता है, पर सब समय मधुरेण समाप्त नहीं होता। अच्छा, आज आप लोग दुःखित भावसे इस प्रकार चुप-

चाप क्यों बैठे हैं, बतलाइए तो ? मैं कहता हूँ, आप घबराइए मत ! आप लोग वनके विहङ्ग हैं—दो टुकड़े कलाकन्दके खाकर वनको ही उड़ जाइएगा, आप लोगोंको कोई नहीं बाँध सकता ! नात्र व्याध-शराः पतन्ति परितो, नैवात्र दावानलः ।—दावानलके बदले यहाँ नारिकेलका जल मिलेगा !

श्रीश—हमें इस बातका दुःख नहीं है रसिक बाबू ! हम लोग सोच रहे हैं कि हमारे द्वारा यह कितनासा उपकार हो रहा है ! भविष्यकी समस्त आशङ्काओंको तो हम दूर नहीं कर सक रहे हैं !

रसिक—आप भी क्या बात करते हैं ! जो कुछ आप लोग कर रहे हैं, उससे दो अबलाओंको चिरकृतज्ञता-पाशमें बाँध रहे हैं—और खुद किसी भी पाशमें बद्ध नहीं हो रहे हैं !

(नेपथ्यमें मृदुस्वरसे जगत्तारिणी)—आह नृप, क्या लड़कपन करती है ! जल्द आँखें पोंछकर उस कमरेमें जा ! चल लल्ली ! रोकर आँखें लाल कर देनेसे कैसी दिखाई देगी, ज़रा सोच तो सही !—नीरू, जा न ! तुम दोनोंके मारे जान आफ़तमें है ! बेचारे भले आदमी कब तक बैठे रहेंगे ? वे क्या सोचेंगे ?

श्रीश—सुनते हैं रसिक बाबू, यह असह्य है ! इससे तो राजपूत लोगोंकी कन्या-हत्या अच्छी थी !

विपिन—रसिक बाबू, इन लोगोंको इस सङ्कटसे सम्पूर्ण रूपसे बचानेके लिये आप हम लोगोंसे जो कुछ कहेंगे, हम वही करनेको तैयार हैं !

रसिक—कुछ नहीं, आप लोगोंको और अधिक कष्ट नहीं दूँगा ! केवल आजका दिन किसी तरह पार कर दीजिए—इसके बाद आप लोगोंको और कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी !

श्रीश—चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी ? आप कहते क्या हैं रसिक बाबू ! हम लोग क्या पत्थर हैं ? आजसे ही हम लोग इनके लिये विशेष रूपसे चिन्ता करनेके अधिकारी बनेंगे।

विपिन—ऐसी घटनाके बाद भी अगर हम इन लोगोंकी तरफ़से उदासीन रहें, तो हम कापुरुष हैं !

श्रीश—आजसे इनके लिये चिन्ता करना हमारे लिये गर्वका विषय होगा, गौरवकी बात होगी !

रसिक—तो अच्छी बात है, चिन्ता कीजिएगा। पर शायद चिन्ता करने या सोचनेके सिवा और कोई कष्ट आप लोगोंको नहीं करना पड़ेगा।

श्रीश—अच्छा रसिक बाबू, हमें कष्ट स्वीकार करने देनेमें आपको इतना एतराज़ क्यों है ?

विपिन—इन लोगोंके लिये अगर हमें कोई कष्ट उठाना पड़े, तो उसे हम सम्मान समझेंगे।

श्रीश—रसिक बाबू, आप दो दिनोंसे हमें फिर फिर यही विश्वास दिलानेकी चेष्टा कर रहे हैं कि हमें कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा—इससे हम लोग वास्तवमें दुःखित हैं।

रसिक—मुझे माफ़ कीजिएगा—मैं अब फिर कभी इस प्रकारकी मूर्खता नहीं करूँगा।—आप लोग कष्ट स्वीकार करें !

श्रीश—आपने क्या हमें अभी तक नहीं पहचाना ?

रसिक—खूब पहचान लिया है ! इसके लिये आप ज़रा भी चिन्ता न करें !

सङ्कुचित नृप और नीरबालाका प्रवेश।

श्रीश—(नमस्कार करके) रसिक बाबू, आप इन्हें कहिए कि ये हमें माफ़ करें।

विपिन—हम लोग अगर भूलकर भी इनके भय और लज्जाका कारण बनें, तो इससे अधिक दुःखकी बात हमारे लिये और कोई भी न होगी; इसके लिये अगर ये लोग क्षमा न करें तो—

रसिक—वाह, आप भी ग़ज़ब करते हैं! क्षमा माँगकर इन दो अपराधिनी अबलाओंका अपराध और अधिक न बढ़ाइए! इनकी उम्र छोटी है, अपने मान्य अतिथियोंके साथ किस प्रकार बातें की जानी चाहिए, अगर यह बात भूलकर ये सिर नीचा किए खड़ी रहें, तो अपने प्रति अनादर समझकर इन्हें अधिक लज्जित न कीजिएगा। क्यों नृप, नीरू, तुम लोगोंकी क्या राय है! हालाँ कि तुम लोगोंकी आँखोंकी पलकें अभी तक गीली हैं, फिर भी इनके प्रति तुम विमुख नहीं हो, यह बात क्या मै इन्हें जतला सकता हूँ? (नृप और नीरू लज्जित भावसे निरुत्तर रहती हैं।) नहीं, ज़रा ओटमेंसे पूछ देखना चाहिए। (अलगसे) इन भले आदमियोंसे क्या कहा जाय, बतलाओ न! क्या यह कहूँ कि जितनी जल्दी हो सके तुम यहाँसे बिदा हो जाओ!

नीर—(धीमी आवाजमें) बकते क्या हो रसिक दादा! हमने यह कब कहा? हमें क्या मालूम था कि ये लोग आए हैं?

रसिक—(श्रीश और विपिनसे) ये कहती हैं—

सखा, यही था क्या करमोंका लेखा!
सूर्य-तापका हाय, हुआ भ्रम
चन्द्र-किरण जब देखा!

इसपर आप लोगोंको और कुछ कहना है?

नीर—(अलगसे) आह रसिक दादा, यह क्या बकते हो ! यह बात हमने कब कही !

रसिक—(श्रीश और विपिनसे) इन लोगोंके मनका भाव मैं पूरी तरहसे व्यक्त नहीं कर सका, इसलिये ये मुझपर बिगड़ रही हैं ! ये कहना चाहती हैं कि चन्द्र-किरण कहनेसे भी यथेष्ट नहीं कहा जाता, इससे भी कुछ और—

नीर—(अलगसे) तुम अगर ऐसा करोगे, तो हम चली जायँगी !

रसिक—सखि, न युक्तं अकृतसत्कारं अतिथिविशेषं उज्झित्वा स्वच्छन्दतो गमनम् ! (श्रीश और विपिनसे) ये कहती हैं कि इनके मनका भाव अगर आप लोगोंके निकट समझाकर प्रकट करूँ, तो ये दोनों यहाँसे चली जायँगी। (नृप और नीरू जाना चाहती हैं।)

श्रीश—रसिक बाबूके अपराधसे आप लोग निर्दोष व्यक्तियोंको सजा क्यों देना चाहती हैं ? हमने तो किसी प्रकारकी धृष्टता की नहीं है ! (दोनोंका 'न ययौ न तस्थौ' भाव।)

विपिन—(नीरको लक्ष्य करके) अगर कोई अपराध पहले किया हो, तो क्या उसके लिये क्षमा प्रार्थना करनेका अवसर नहीं दीजिएगा ?

रसिक—(अलगसे) इस क्षमाके लिये बेचारा कई दिनोंसे मौक़ा ढूँढ़ रहा है—

नीर—(अलगसे) क़सूर क्या किया है, जिसके लिये माफ़ किया जाय ?

रसिक—(विपिनसे) ये कहती हैं, आपका अपराध इतना मनोहर है कि इन्होंने उसे अपराध ही नहीं समझा। पर अगर वही किताब मैं चुरानेका साहस करता, तो वह अपराध समझा जाता—क़ानूनकी एक ख़ास दफ़ामें यही लिखा है।

विपिन—ईर्षा न कीजिए, रसिक बाबू! आप लोग सदा अपराध करनेका अवकाश पाते हैं और उसके लिये दण्डभोग करके कृतार्थ होते हैं; मैंने भाग्यवश एक मात्र अपराध करनेका अवसर पाया था, पर मैं इतना दुर्भाग्य निकला कि दण्डनीय भी नहीं समझा गया, और क्षमा मिलनेकी योग्यता भी प्राप्त नहीं कर सका!

रसिक—विपिन बाबू, अभी एकदम हताश न होइए! शास्ति अक्सर देरमें मिलती है, पर मिलती अवश्य है! संभव है, आपको चट-पट मुक्ति न भी मिले।

नौकरका प्रवेश।

नौकर—जल-पान तैयार है। (नृप और नीरका प्रस्थान।)

श्रीश—रसिक बाबू, हम क्या अकाल-पीडित देशसे आए हैं? जल-पानके लिये इतनी जल्दी काहेकी है?

रसिक—मधुरेण समापयेत्।

श्रीश—(लम्बी साँस लेकर) पर समापन तो मधुर नहीं है! (अलगसे विपिनके प्रति) पर विपिन, इन लोगोंको तो धोखा देकर नहीं जा सकेंगे!

विपिन—(अलगसे) अगर ऐसा करें, तो हम पूरे पाखण्डी हैं!

श्रीश—(अलगसे) अब हम लोगोंका कर्तव्य क्या है?

विपिन—(अलगसे) भला यह भी कोई पूछनेकी बात है!

रसिक—आप लोग घबराए मालूम देते हैं! पर चिन्ताकी कोई बात नहीं है, जिस तरहसे भी होगा मैं आप लोगोंका उद्धार अवश्य करूँगा।

(सबका प्रस्थान।)

अक्षय और जगत्तारिणीका प्रवेश।

जगत्—देखे बेटा, कैसे लड़के हैं?

अक्षय—अम्मौंजी, तुम्हारी जाँच अच्छी है, यह बात मैं अस्वीकार नहीं कर सकता!

जगत—लड़कियोंके ढङ्ग देखे? अब रोना-पीटना न जाने कहाँ गायब हो गया!

अक्षय—यही तो उनका दोष है! पर अम्मौंजी, अब तुम्हें खुद जाकर दोनों लड़कोंको आशीर्वाद देना होगा।

जगत—यह क्या ठीक होगा बेटा? वे क्या राजी हो गए हैं?

अक्षय—क्यों नहीं! अब तुम खुद जाकर आशीर्वाद दे सको, तो सब मामला तय हो जाता है।

जगत्—अच्छी बात है, तुम लोग अगर कहते हो तो जाऊँगी। मैं उनकी अम्मौंके बराबर उम्रकी हूँ, मुझे लाज किस बातकी!

पुरबालाका प्रवेश।

पुर—खाना थालियोंमें सजा आई हूँ। उन्हें किस कमरेमें बैठाया है, मैं तो देख ही न पाई।

जगत्—क्या बतलाऊँ पुरी, चाँदसे उज्ज्वल लड़के हैं!

पुर—यह तो मैं जानती ही थी! नीर और नृपके भाग्यमें क्या बुरे लड़के हो सकते हैं!

अक्षय—उनकी बड़ी दीदीके भाग्यकी छूत जो लग गई है!

पुर—अच्छा ठहरो; जरा उनके साथ जाकर दो-चार बातें तो कर आओ! पर शैल कहाँ गई?

अक्षय—वह खुश होकर दर्वाज़ा बन्द करके पूजा करने बैठी है।

१६

अक्षय—मामला क्या है ? रसिक दादा, आजकल तो बड़ी बड़ी दावतें दे रहे हो! जिसे दररोज सुबह शाम देखते हो, उसे क्या भूल ही गए ?

रसिक—इनकी खातिरदारी नई है, पत्तलमें जो कुछ आ पड़ता है, उसीमें खुश हो जाते हैं; पर तुम्हारी खातिरदारी पुरानी हो आई है—तुम्हें नए सिरेसे खुश करूँ, इतनी शक्ति मुझमें नहीं है।

अक्षय—पर सुना था, आजकी सारी मिठाई और इस कुटुम्बका सारा अनास्वादित मधु स्वाहा करनेके लिये दो आख्यातनामा युवकोंका आगमन होगा—ये लोग क्या उन्हींके अंशपर हाथ साफ़ कर रहे हैं ! रसिक दादा, तुमने भूल तो नहीं की ?

रसिक—भूलके लिये ही तो मैं विख्यात हूँ। तुम्हारी अम्माँजी जानती हैं कि उनके बूढ़े रसिक चाचा जिस काममें हाथ डालेंगे, उसीमें भूल होगी।

अक्षय—कहते क्या हो रसिक दादा ? तुमने किया क्या है ? उन दो लड़कोंको कहाँ भेज दिया ?

रसिक—भ्रमवश उन्हें गलत ठिकाना बतला आया हूँ!

अक्षय—उन बेचारोंकी क्या गति होगी ?

रसिक—विशेष हानि नहीं होगी। वे इस समय कुम्हार टोलेमें नीलमाधव चौधरीके मकानमें जलपान समाप्त कर चुके होंगे। वनमाली भट्टाचार्यने उनकी देख-रेखका भार ले लिया है।

अक्षय—गरज यह कि मिठाई तो सभीकी पत्तलोंमें पड़ गई, पर तुम्हारा जलपान अवश्य कुछ कड़वासा होगा! इसी समय भ्रम-संशोधन

कर डालो तो अच्छा हो! श्रीश बाबू, विपिन बाबू, कुछ बुरा न मानना, इस बातमें एक पारिवारिक रहस्य है।

श्रीश—सरलप्रकृति रसिक बाबूने यह भेद हमारे निकट खोल ही दिया है! वे हमें धोखा देकर यहाँ नहीं लाए हैं!

विपिन—मिठाईकी थालीपर हमने अनधिकार आक्रमण नहीं किया है—इस बातको हम अच्छी तरहसे प्रमाणित करनेके लिये तैयार हैं।

अक्षय—कहते क्या हो विपिन बाबू? तो क्या चिरकुमार-सभाको चिरकालके लिये रुलाकर छोड़ आए हो? जान बूझकर, इच्छापूर्वक?

रसिक—नहीं, नहीं, तुम भूल कर रहे हो, अक्षय बाबू।

अक्षय—फिर भी भूल? विपिन भैया, आज क्या सभीका भूल करनेका दिन है?—(गाता है)

भूल! आज यह कैसी भूल!
आज भूलकी पवन खिलावे
भूल-लतामें फूल!
लहर भूलके सागरमें अब
उठे, लाँघकर कूल!

रसिक—तुम्हारी अम्माँजी आ रही हैं।

अक्षय—आवेंगी क्यों नहीं! उन्हें तो कुछ कुम्हारटोलेके ठिकानेपर जाना नहीं है!

जगत्तारिणीका प्रवेश।

श्रीश और विपिन झुककर प्रणाम करते हैं। दोनोंको दो सोनेकी मुहरें देकर जगत्तारिणी आशीर्वाद देती हैं। अक्षयके साथ जगत्तारिणी अलगसे बातें करती हैं।

अक्षय—अम्मौंजी कहती हैं कि तुम लोगोंने आज अच्छी तरहसे खाना नहीं खाया, सभी पत्तलमें पड़ा है।

श्रीश—हम लोगोंने दुबारा माँगकर खाया है!

विपिन—जो पत्तलमें पड़ा है वह तीसरी बार आया है।

श्रीश—वह अगर पड़ा न रहता, तो फिर हम लोगोंको पड़े रहना पड़ता!

जगत्तारिणी—(अलगसे) तो तुम इन लोगोंको बिठालकर बातें करो बेटा, मैं जाती हूँ। (प्रस्थान।)

रसिक—नहीं, यह बड़ा अन्याय हुआ है!

अक्षय—अन्याय कैसा?

रसिक—मैं इन्हें बार-बार वचन देकर लाया हूँ कि आज भोजन करके ही तुम्हें छुट्टी मिल जायगी, किसी प्रकारके वध-बन्धनका डर नहीं है!—पर—

श्रीश—इसमें 'पर' कहनेकी कौनसी बात है रसिक बाबू? आप इतने चिन्तित क्यों होते हैं?

रसिक—आप कहते क्या हैं श्रीश बाबू! मैं जब आप लोगोंको वचन दे चुका हूँ—

विपिन—तो आपने कौनसा बुरा काम किया है?

श्रीश—अम्मौंजी हमें जो आशीर्वाद दे गई हैं, हम उसके योग्य बनें, बस मैं यही कामना करता हूँ।

रसिक—नहीं, नहीं, श्रीश बाबू, यह बात ठीक नहीं है! आप लोग लाचार होकर सौजन्यकी खातिर—

विपिन—रसिक बाबू, आप हमारे प्रति अविचार न कीजिए—लाचार होकर—

रसिक—लाचारी नहीं तो क्या है साहब! यह बात कभी नहीं होगी! बल्कि मैं उन दो लड़कोंको वनमालीसे छुड़ाकर कुम्हार टोलेसे ले आऊँगा, परन्तु फिर भी—

श्रीश—आपका हमने क्या बिगाड़ा है रसिक बाबू?

रसिक—नहीं, नहीं, यह बिगाड़की बात नहीं है। आप लोग भले आदमी हैं, कुमार-व्रत ग्रहण किए हुए हैं—मेरे अनुरोधसे दूसरोंका उपकार करने आकर अन्तको—

विपिन—अन्तको अपना उपकार कर लेंगे, यह बात आप नहीं सह सकते—हमारे आप इतने बड़े हितैषी मित्र हैं!

श्रीश—हम जिसे सौभाग्य समझे बैठे हैं, आप हमें उससे वञ्चित क्यों करना चाहते हैं?

रसिक—अन्तको आप मुझे दोष तो न देंगे?

विपिन—जरूर देंगे, अगर आप स्थिर होकर शुभ कर्ममें हमारी सहायता न करेंगे।

रसिक—मैं अब भी सावधान किए देता हूँ—

> गतं तद्गाम्भीर्यं तटमपि चितं जालिकशतैः।
> सखे हंसोत्तिष्ठ, त्वरितममुतो गच्छ सरसीम्।

अर्थात् वह गाम्भीर्य चला गया है, नदीके किनारे चिड़ीमार-जाल फैलाए हुए हैं, हे सखे हंस, उठो, यहाँसे जल्दी सरसीमें चले जाओ!

श्रीश—कभी नहीं! आप संस्कृत श्लोकोंको उठाकर सिर पर भी दे मारें, तब भी सखा हंस यहाँसे नहीं हिलेंगे।

रसिक—जगह ख़राब है, इसमें शक नहीं। हिलनेका उपाय ही नहीं है! मैं तो अचल होकर बैठा हूँ,—हाय, हाय—

अयि कुरङ्ग तपोवनविभ्रमात्
उपगतासि किरातपुरीमिमाम्!

नौकरका प्रवेश।

नौकर—चन्द्र बाबू आये हैं।

अक्षय—यहीं बुला ला!

(नौकरका प्रस्थान।)

रसिक—इन दो चोरोंको एकदम दारोगाके हाथमें दे दिया जाय।

चन्द्र बाबूका प्रवेश।

चन्द्र—आप लोग आ पहुँचे हैं। पूर्ण बाबू भी तो दिखलाई दे रहे हैं।

अक्षय—जी नहीं, मैं पूर्ण नहीं; पर अक्षय तो हूँ।

चन्द्र—अक्षय बाबू! अच्छी बात है। आपकी भी आवश्यकता थी।

अक्षय—मेरे समान अनावश्यक व्यक्तिको जिस काममें लगाइएगा, मैं उसीमें लग सकता हूँ। बतलाइए क्या करना होगा?

चन्द्र—मैंने सोचकर देखा है कि यदि हमारी सभासे कुमार-व्रतका नियम न हटाया जायगा, तो सभाका स्वरूप बहुत सङ्कीर्ण रहेगा। श्रीश बाबू और विपिन बाबूको यह बात ज़रा अच्छी तरहसे समझानी होगी।

अक्षय—यह तो बड़ा मुश्किल काम है! मुझसे हो सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह है!

चन्द्र—एक बार किसी मतको अच्छा समझकर ग्रहण करनेसे ही उसे परित्याग करनेकी क्षमताको दूर कर देना उचित नहीं है। मतसे विवेचना-शक्ति बड़ी है। श्रीश बाबू, विपिन बाबू—

श्रीश—हम लोगोंको अधिक समझाना वृथा है—

चन्द्र—वृथा क्यों है ? आप लोग क्या युक्तियोंपर भी ध्यान न देंगे ?

विपिन—हम लोग आपके ही मत—

चन्द्र—मेरा मत किसी समय भ्रान्त था, यह बात मैं स्वीकार करता हूँ। आप लोग अभी तक उसी मत—

रसिक—यह लीजिए, पूर्ण बाबू भी आ पहुँचे ! आइए, आइए !

पूर्णका प्रवेश ।

चन्द्र—पूर्ण बाबू, तुम्हारे प्रस्तावके अनुसार हम लोग सभामेंसे कुमार-व्रतको हटा देनेके लिये ही आज यहाँ सम्मिलित हुए हैं ! पर श्रीश बाबू और विपिन बाबू बड़े दृढ़प्रतिज्ञ हैं, इन्हें समझा सकनेसे ही—

रसिक—इन्हें समझानेमें मैंने कोई बात उठा नहीं रक्खी है चन्द्रबाबू।

चन्द्र—आपके समान वाग्मीको भी फल नहीं प्राप्त हुआ तो—

रसिक—मैंने फल पाया है, यह बात तो 'फलेन परिचयते'।

चन्द्र—आप क्या कह रहे हैं, मैं अच्छी तरहसे नहीं समझा।

अक्षय—अजी रसिक दादा, चन्द्र बाबूको खूब साफ़ तौरसे समझा देनेकी जरूरत है ! मैं दो प्रत्यक्ष प्रमाण अभी लाकर उपस्थित करता हूँ।

श्रीश—पूर्ण बाबू, आपका मिज़ाज तो अच्छा है ?

पूर्ण—हाँ।

विपिन—आपकी तबीयत जरा गिरी हुई माळूम देती है।

पूर्ण—नहीं, कुछ नहीं।

श्रीश—आपका इम्तहान तो अब निकट है।

पूर्ण—हाँ।

नृप और नीरको लेकर अक्षयका प्रवेश।

अक्षय—(नृप और नीरसे) ये चन्द्र बाबू हैं, ये तुम लोगोंके गुरुजन हैं। इन्हें प्रणाम करो। (नृप और नीरका प्रणाम) चन्द्र बाबू, नए नियमसे आप लोगोंकी सभाके ये दो सभ्य बढ़ गए हैं!

चन्द्र—बड़ी खुशी हुई। ये कौन हैं?

अक्षय—मेरे साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये मेरी दो सालियाँ हैं। श्रीश बाबू और विपिन बाबूके साथ इनका सम्बन्ध शुभलग्नमें और भी घनिष्ठ होगा। इन्हें देखकर ही आप समझ जायँगे कि रसिक बाबू इन दो युवकोंका मत परिवर्त्तित करनेमें केवलमात्र अपनी वाग्मिताके कारण ही समर्थ नहीं हुए हैं।

चन्द्र—बड़ी खुशीकी बात है।

पूर्ण—श्रीश बाबू, बड़ी खुशी हुई! विपिन बाबू, आप लोगोंका बड़ा सौभाग्य है! आशा करता हूँ, अबलाकान्त बाबू भी वञ्चित नहीं हुए होंगे, उन्हें भी एक—

निर्मलाका प्रवेश।

चन्द्र—निर्मला, तुम्हें सुनकर प्रसन्नता होगी कि श्रीश बाबू और विपिन बाबूके साथ इनके विवाहका सम्बन्ध निश्चित हो गया है। ऐसा होनेसे कुमार-व्रत हटा देनेके सम्बन्धमें प्रस्ताव पेश करना ही व्यर्थ है।

निर्मला—पर अबलाकान्त बाबूका मत तो नहीं लिया गया है—उन्हें यहाँ नहीं देखती हूँ—

चन्द्र—ठीक बात है, मैं यह बात भूल ही गया था। वह आज अभी तक आए क्यों नहीं?

रसिक—कुछ चिन्ता न कीजिए, उनका परिवर्तन देखकर आप लोग और भी अधिक आश्चर्यचकित होंगे।

अक्षय—चन्द्र बाबू, अबकी मुझे भी अपने दलमें ले लीजिए। अब यह सभा अत्यन्त लोभनीय हो उठी है। आप मुझे वञ्चित न कर सकेंगे।

चन्द्र—आपको पाना हमारा सौभाग्य है।

अक्षय—मेरे साथ ही एक सभ्यकी वृद्धि और होगी। आजकी सभामें उन्हें किसी तरह उपस्थित न कर सका। अभी वह अपनेको सुलभ नहीं करेंगी—विवाह-मण्डपमें भूतपूर्व कुमार-सभाको पिण्डदान देकर, उसके बाद अगर अपने दर्शन दें तो दें! अब अवशिष्ट सभ्यके आनेसे ही कुमार-सभाकी सम्पूर्ण समाप्ति हो जायगी!

शैलका प्रवेश।

शैल—(चन्द्रको प्रणाम करके) मुझे क्षमा कीजिएगा!

श्रीश—यह क्या, अबलाकान्त बाबू—

अक्षय—आप लोगोंने मतका परिवर्त्तन किया है, इन्होंने केवल अपने वेशका ही परिवर्त्तन किया है।

रसिक—शैलजा भवानी अब तक किरातके वेशमें थीं, आज इन्होंने फिर तपस्विनीका वेश ग्रहण कर लिया है।

चन्द्र—निर्मला, मैं यह कुछ भी नहीं समझ सकता हूँ!

निर्मला—अन्याय, बड़ा अन्याय है! अबलाकान्त बाबू—

अक्षय—निर्मला देवी ठीक कहती हैं कि यह अन्याय है; पर यह विधाताका अन्याय है! इन्हें अबला-कान्त ही होना चाहिए था, पर भगवानने इन्हें विधवा शैलबाला बनाकर न जाने कौनसा मङ्गल घटित किया है, यह रहस्य हम लोगोंके अगोचर है!

शैल—(निर्मलासे) मैंने जो अन्याय किया है, उस अन्यायका प्रतीकार क्या मुझसे हो सकेगा? बहन, आशा करती हूँ कि यथासमय वह संशोधित हो जायगा।

पूर्ण—(निर्मलाके निकट आकर) इस अवकाशमें मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। चन्द्र बाबूके पत्रमें मैंने जो स्पर्द्धा प्रकट की थी, वह अनुचित थी—मेरे समान अयोग्य—

चन्द्र—कुछ अन्याय नहीं हुआ पूर्ण बाबू! आपकी योग्यता अगर निर्मला नहीं समझ सकती, तो यह उसीकी विवेचनाका अभाव है! (निर्मला सिर झुकाकर निरुत्तर होकर प्रस्थान करती है।)

रसिक—(पूर्णके प्रति अलगसे) घबराइए मत पूर्ण बाबू, आपकी दरख्वास्त मञ्जूर हो गई है—प्रजापतिकी अदालतमें आपको डिक्री मिल गई है—कल तड़के ही उसे जारी करनेकी चेष्टा कीजिएगा।

श्रीश—(शैलबालासे) आपने बड़ा धोखा दिया है।

विपिन—सम्बन्धके पहले ही परिहास कर लिया है।

शैल—पीछे यह कहकर छुट्टी नहीं पा सकोगे!

विपिन—छुट्टी चाहिए भी नहीं!

रसिक—अब नाटक समाप्त हुआ—यहाँपर यह भरत-वाक्य उच्चारित हो जाना चाहिए—

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु॥